Language and Learning foundation

*Strong Foundation, **Stronger** Future*

unicef for every child

बहुभाषी शिक्षण – आरंभिक शिक्षण की नींव

लेखों का संग्रह

प्रथम संस्करण : 2021

© लैंग्वेज एंड लर्निंग फ़ाउंडेशन
इस संदर्शिका या इसके किसी अंश का किसी भी तरह प्रकाशन, वितरण या पुनः प्रकाशन लैंग्वेज एंड लर्निंग फ़ाउंडेशन की लिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

संपर्क करें–
ऑफिस पता : लैंग्वेज एंड लर्निंग फ़ाउंडेशन; वी–19, प्रथम तल, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन,
नई दिल्ली–110016
फ़ोन : 011–26106045
वेबसाइट : www.languageandlearningfoundation.org
ईमेल : info@languageandlearningfoundation.org

विषय सूची

इकाई–1	**विद्यालय – एक कटु सत्य**	**3**
पाठ–1	'खतराः स्कूल! (कुछ अंश)	4
पाठ–2	अशोक की कहानी	13
इकाई–2	**शिक्षा के लिए मातृभाषा क्यों?**	**16**
पाठ–3	'वो' और 'उनकी' भाषा	17
पाठ–4	घर और स्कूल की भाषा में अंतर – एक गंभीर समस्या	20
पाठ–5	शुरूआती कक्षाओं में बच्चों की प्रथम भाषा का महत्व	22
पाठ–6	मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा क्यों?	25
इकाई–3	**भाषा : विविधता, सत्ता और कानूनी प्रावधान**	**30**
पाठ–7	भाषा और बोली	31
पाठ–8	भाषाएँ, असमानताएँ और हाशियाकरण : कुछ प्रमुख बिंदु	36
पाठ–9	मातृभाषा में शिक्षण के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान	41
इकाई–4	**बहुभाषी शिक्षा के आयाम**	**44**
पाठ–10	बहुभाषी शिक्षा क्या होती है?	45
पाठ–11	बहुभाषी शिक्षण के आधारभूत तत्व	60
पाठ–12	एक बहुभाषी कक्षा में	49
इकाई–5	**अपरिचित भाषा सीखना**	**52**
पाठ–13	प्रथम भाषा से द्वितीय भाषा सीखने में मदद	53
पाठ–14	अपरिचित भाषा सीखने के कुछ सिद्धांत	56
पाठ–15	अपरिचित भाषा सिखाने की रणनीतियाँ	59

इकाई-1

विद्यालय - एक कटु सत्य

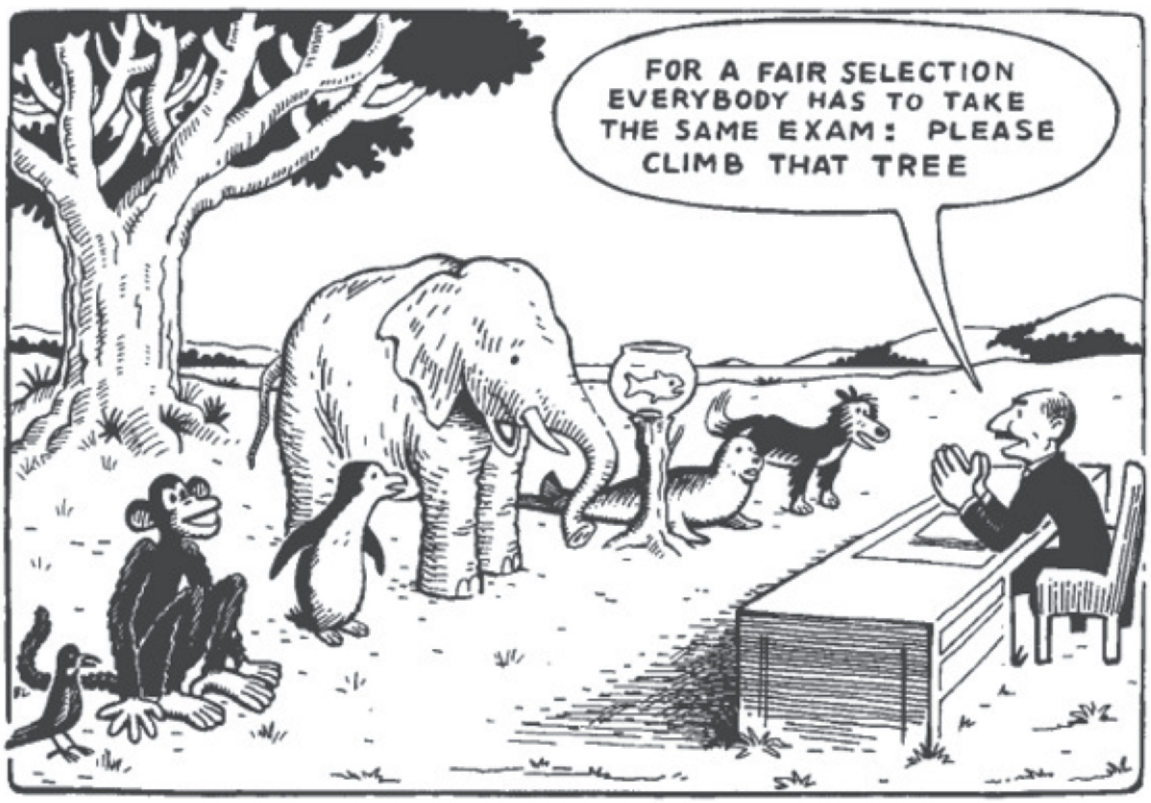

Source: *https://scholasticadministrator.typepad.com/.a/6a00e54f8c25c98834017c317442ea970b-popup*

पाठ–1

‘खतरा: स्कूल!’ (कुछ अंश)

‘सभ्य’ स्कूल

मध्यकालीन यूरोप में ऐसा बदलाव आया कि शिक्षा स्कूली व्यवस्था का उत्पादन बन गई। जिस तरह से अपने देश के प्राचीन काल में समाज का एक वर्ग– उच्च जाति–ज्ञान का भंडार माना जाता था, उसी तरह यूरोपीय समाज में सिखाने वाला एक वर्ग खड़ा हो गया। इस वर्ग में आमतौर पर उच्च जाति या ऊँचे घराने के लोग थे। ये लोग ज्ञान का एक बनावटी वातावरण में फैलाने में माहिर बन गए। यह वातावरण रोज़मर्रा की ज़िन्दगी और व्यस्कों से दूर हो गया। यही थी स्कूली व्यवस्था की शुरुआत। ज्यों–ज्यों सदियां बीतती गईं, यह स्कूल धनवानों के लिए रिज़र्व होते गए। बाकी लोग – किसान, मज़दूर या अन्य सर्वहारा – अपने जीवन के संघर्ष से ही शिक्षित रहे।

‘सभ्य’ लोगों के इस स्कूल में पुरानी परंपराओं और नैतिक मूल्यों पर खूब ज़ोर दिया जाता था। कुछ हद तक बोलने में माहिरी व फिलॉसफी पर भी ज़ोर था। वैज्ञानिक सोच–समझ, जिससे बदलाव आने का डर था, भाषणबाजी और लैटिन भाषा से कम महत्व की थी। आखिर यही दो चीज़ें तो ऐसी परंपरा की प्रतीक थीं जिसके अंतर्गत दुनिया और उसके समाज को कभी न बदलने वाला माना जाता था।

ऐसे ‘सभ्य’ वर्गों के लिए पढ़ना–लिखना अपनी तथाकथित ‘सभ्यता’ को कायम रखने का एक ज़रूरी हथियार बन गया।

सन् 1802 में डेस्टूट डी, ट्रेसी नाम के एक साहब ने शिक्षा के इस बंटवारे पर एक टिप्पणी की थी। इस टिप्पणी का पढ़ते हुए लगता है जैसे यह हमारी वर्तमान शिक्षा नीति की भविष्यवणी थी।

जनाब डेस्टूट ने लिखा :

''किसी भी सभ्य समाज में यह अनिवार्य है कि लोगों के दो वर्ग हों। एक वर्ग मेहनत से अपना जीवन यापन करने वालों का और दूसरा उनका जो सम्पत्ति या दिमागी श्रम से आय उत्पन्न करते हैं। पहने को हम श्रमिक वर्ग कहते हैं और दूसरे को मैं शिक्षित वर्ग कहूंगा।''

''श्रमिकों को तो जल्द–से–जल्द अपने बच्चों के श्रम की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए इन बच्चों को छोटी उम्र से ही कठिन परिश्रम के काम सीखना ज़रूरी है और यही उनके भाग्य में है। इसी वज़ह से इनका स्कूल में ज़्यादा देर तक रहना फ़िजूल है...''

''लेकिन शिक्षित वर्ग के बच्चे आराम से पढ़ाई–लिखाई में अपना समय लगा सकते हैं, क्योंकि जो उनकी किस्मत में है उसको पाने के लिए उन्हें उच्च शिक्षा की ज़रूरत रहती है। उन्हें ऐसा ज्ञान हासिल करना भी ज़रूरी है जो एक विकसित दिमाग ही हासिल कर सकता है...''

''यह सब ऐसे मसले हैं जो मनुष्यों के हाथ में नही है। यह तो मानव व समाज की प्रकृति में ही निहित हैं.... इनको कोई नही बदल सकता... हमें अटल चीज़ों को ही ध्यान में रखकर सोचना चाहिए...''

''इस सबसे हमें यही निष्कर्ष निकालना चाहिए कि अगर किसी भी एक राष्ट्र में नागरिकों की शिक्षा के प्रति सही नज़रिया अपनाया जा रहा हो तो दो बिल्कुल अलग–अलग शिक्षा व्यवस्थाएँ होनी चाहिए जिनमें कोई आपसी संबंध न हो।''

एक स्कूल अमीरों का

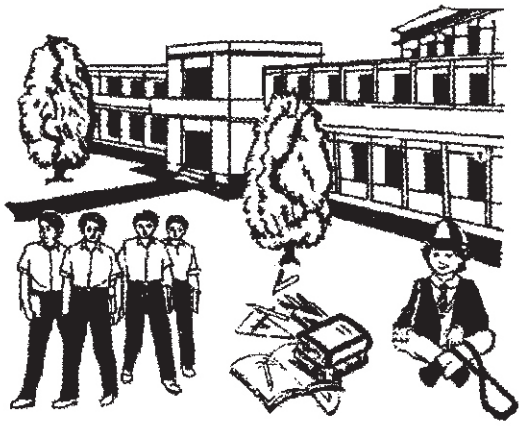

'सभ्य' स्कूल तब तक टिके रहे जब तक समाज में सामंती प्रथा चलती रही। लेकिन पूंजीवादी समाज आने से फर्क आना ज़रूरी हो गया, क्योंकि पूंजीवाद की नींव खेती न होकर कारखाने थे।

मशीनीकरण ने तो दुनिया का नक्शा ही बदल दिया। नई टेक्नोलॉजियों के साथ–साथ नए सामाजिक वर्ग भी उभरने लगे। पुराने ज़मींदार वर्ग के अलावा, एक नए औद्योगिक मध्यम वर्ग ने समाज में जड़ जमानी शुरू कर दी। और नए उत्पादन केन्द्रों यानी कल–कारखानों के इर्द–गिर्द गरीब कामगार व मज़दूर जमा होते गए।

इस बदलते समाज में भी स्कूल में पहुंच उच्च वर्ग की ही रही। लेकिन नई अर्थव्यवस्था को अब ज़रूरत पड़ी विज्ञान व टेक्नोलॉजी की, इसलिए स्कूल में पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम में बदलाव आया और स्कूलों को आधुनिक होना पड़ा। विज्ञान व टेक्नोलॉजी के विषय भी परंपरागत विषयों, जैसे फिलॉसफी, लैटिन आदि की तरह महत्व के समझे जाने लगे।

और एक स्कूल गरीबों का

मध्यम वर्ग जो समाज में एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरा था इस बात की फिक्र करने लगा कि हज़ारों–लाखें 'नासमझ' मज़दूर भी न्यूनतम शिक्षा पाकर अनुशासित कामगार व 'अच्छे' नागरिक बनें।

इस तरह धीरे–धीरे अमीरों के स्कूलों के साथ–साथ एक और स्कूल उपजा–गरीबों का स्कूल। इस स्कूल का मकसद यह था कि भविष्य के कामगारों को थोड़ा 'सभ्य' बनाया जाए ताकि वे औद्योगिक समाज की सीढ़ी के पहले कदम पर रहने योग्य हो जाएं।

यह दोहरी पढ़ाई एक दोहरे समाज का आईना बनकर सामने आई। कामगारों के बच्चे 'प्राथमिक स्कूलों' में जाने लगे। इन स्कूलों में यह निश्चित था कि पढ़ाई कुछ ही साल की हो, लंबे अर्से की नहीं! उच्च वर्ग के बच्चों का रास्ता अलग था और उनके भविष्य का ज़िम्मा उन्हीं के वर्ग के हाथ में था।

छह साल की उम्र से ही बच्चों को लाइन में या तो ज़मीन पर बिठाया जाता है या लकड़ी के सख्त तख्तों पर अनुशासन से चिपकने की हिदायत दी जाती है। उनसे कहा जाता है हिला–डुलो मत, न आजु–बाजू देखो, न पीछे। और फिर घंटों उनको तरह–तरह के विचित्र शब्द सुनाए जाते हैं। सुनाने वाला एक इंसान जाता है तो दूसरा आता है। क्या यह एक महज़ इत्तफाक है कि इस मानव ऊर्जा और जिज्ञासा के बंडलों को डरा–धमकाकर घंटों बिना हिले–डुले चारदीवारी में बंद करके रखा जाता है। जबकि बाहर खुली हवा, सूरज की रोशनी और गर्मी में जीवन पनपता है? पेशाब पानी की छुट्टी भी छह घंटों में चंद मिनिट की ही होती है, वह भी एक निश्चित समय पर!

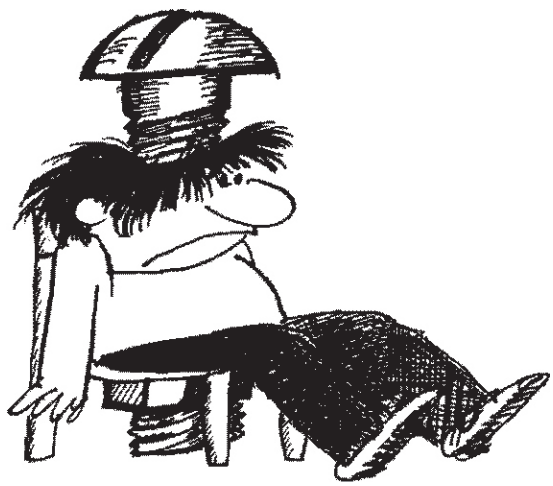

जहाँ बुत की तरह बैठो और चुप रहो

जीवन को नष्ट करने का इससे अच्छा उपाय क्या हो सकता है? इस व्यवस्था से मांस–पेशियाँ, इंद्रियाँ, अंदरूनी अंग, तंत्रिकाएँ और दिमाग की कोशिकाएं थक जाती हैं। वास्तव में शिक्षण के भाषण से अधिक हानि पहुँचाती है बैठने की यह मुद्रा! अब यह माना गया है कि लगातार इस मुद्रा में बैठने से शरीर की शिराओं आदि को अनुकसान पहुँचता है और 20% से अधिक बच्चों की रीढ़ की हड्डी टेढ़ी हो जाती है। लगभग एक सदी से (जब से इस तरह के स्कूल शुरू हुए हैं) बच्चे इस मुद्रा में बेचैनी से पाँव सहलाते रहे हैं, हाथ इधर–उधर करते रहे हैं और घंटी बजने पर रायफल से निकली गोली की तरह भागते रहे हैं। इस बेचैनी को अनुशासनहीनता का नाम दिया गया है और कभी नहीं समझा जाता है कि यह बेचैनी एक बंधन का नतीज़ा है, जो बच्चों पर थोपा गया है। नहीं, यह सब इत्तफ़ाक नहीं है, यह सब तो जान–बूझकर किया जाता है। इसको बदलना होगा, तोड़ना होगा।

जहाँ केवल मानक भाषा ही सभ्यता की सूचक है

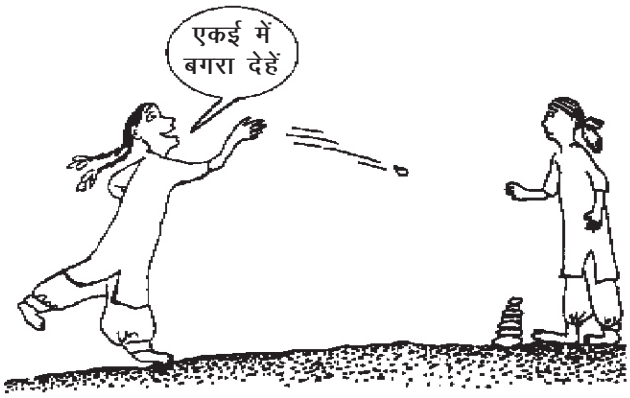

शुरू के वर्षो में, छात्रों को एक ऐसी भाषा सीखनी पड़ती है जो न तो उनकी होती है, न उनके माँ–बाप की।

शुद्ध स्कूली भाषा को ही सभ्य माना जाता है।

बच्चे की स्वाभाविक बोली जहाँ भी इस सभ्य भाषा से अलग हो जाती है, उसे नोट किया जाता है, ठीक किया जाता है। शिक्षक द्वारा इस गलती के लिए सज़ा दी जाती है। यह सब इस आशा में होता है कि धीरे–धीरे बच्चा स्कूल की भाषा सीख जाएगा।

लेकिन नतीज़ा उल्टा होता है। काफी बच्चे इस डर से कि उन्हें गलत बोलने के लिए टोका व ठोका जाएगा, चुप रहना ही बेहतर समते हैं।

लिखने का काम भी उतना ही करते हैं जितनी की ज़रूरत है, ताकि कम–से–कम यातनाएँ मिलें।

भाषा विशेषज्ञ व मनोवैज्ञानिक दोनों ही ऐसे पढ़ाने के तरीकों को कोसते हैं जिससे बच्चे यह महसूस करे कि उनकी स्वाभाविक शैली उनसे छिन रही है।

इस प्रकार बच्चे की ऐसी बोली या भाषा को नष्ट करके, जो मानक भाषा से भिन्न है, यह निश्चित हो जाता है कि वह ज़िंदगी भर कभी भी ठीक से अभिव्यक्त न कर पाए। इसके बावजूद लोगों को आश्चर्य होता है कि यही बच्चे युवा होने पर अभिव्यक्ति में कमज़ोर हैं।

लेकिन इस तरह हानि और भी गंभीर है, क्योंकि इसका असर अभिव्यक्ति तक ही सीमित नहीं है। किसी भी समुदाय की बोली या भाषा उसकी संस्कृति का एक अहम हिस्सा होती है और उस बोली को गलत या पिछड़ी ठहराना एक तरह से उस पूरे समुदाय की पहचान व संस्कृति को धिक्कारना है।

... असलियत से कटे हुए

स्कूल के बाहर होने वाली जीवन की विविधताओं से भरी घटनाओं से स्कूली बच्चे पूरी तरह अनभिज्ञ रहते हैं। पाठ्यक्रम में शुमार न होने के कारण शिक्षक इन घटनाओं को समझाने और इनमें बच्चों की दिलचस्पी जगाने का कोई प्रयास नहीं करते।

पाठ्यपुस्तकीय पढ़ाई का रोज़मर्रा की असलियत या व्यावहारिक ज़रूरतों से कोई संबंध नहीं दिखाई पड़ता। शायद ही ऐसी कोई कक्षा हो जिसमें लिखाई संवाद का माध्यम बनती हो या गणित वास्तविक समस्याओं को सुलझाने का साधन। इसलिए शिक्षा बेकार और उबाऊ लगने लगती है। ऊपर से स्कूल का बनावटी वातावरण तनाव भी पैदा करता है।

बच्चों को परिभाषाएँ और फॉर्मूले रटाने के बजाए खेल–खेल में साधारण प्रयोगों द्वारा विज्ञान के मूल सिद्धांत सिखाने की एकाध अनुकरणीय कोशिशों को भी सरकार की ओर से कोई खास प्रोत्साहन नहीं मिला है। मध्य प्रदेश में एक ऐसी कोशिश हुई। खेतों में ले जाकर स्कूली बच्चों के मन में कृषि विज्ञान के बारे में उत्सुकता जगाई गई। बच्चों ने स्वयं किसानों से बात करके जाना कि रबी और खरीफ की फसलें क्या होती हैं, ज़मीन कितने प्रकार की होती है, खेती की क्या प्रणालियाँ हैं, उर्वरक के इस्तेमाल से क्या फायदे–नुकसान हैं। ऐसे माहौल में पनपी तर्कबुद्धि से इन बच्चों ने पिछले दिनों तक कुछ स्थानीय अंधविश्वासों को स्वयं ही चुनौती दी। लेकिन सार्थ शिक्षा का यह प्रयाग मुट्ठी भर स्कूलों तक ही सीमित रह गया है।

एक तनाव–रहित सहयोगी माहौल में शिक्षा को व्यापक, उपयोगी और रोचक बनाना सरकार या सरकारी शिक्षाशास्त्रियों के एजेंडा पर केवल खानापूरी के लिए ही दिखाई पड़ता है।

चूहों की कथा, बच्चों की व्यथा

अगर शिक्षक का
छात्र की सफलता में
पक्का विश्वास होगा तो
बच्चा अवश्य सफल होगा।
शिक्षक की
पक्षपातपूर्ण धारणाओं
और मान्यताओं का
बच्चों पर बेहद
गहरा असर पड़ता है।
अन्य शब्दों में
हम कह सकते हैं
कि अच्छे और बुरे छात्र,
शिक्षक ही
बनाता है।

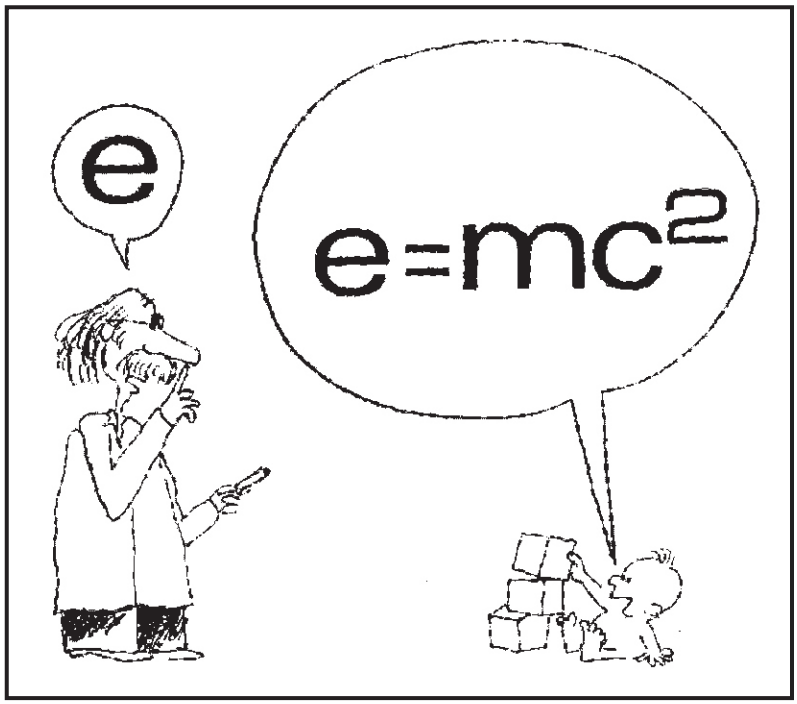

अमरीका में मनोविज्ञान के प्रोफेसर रॉबर्ट रोज़नथाल ने एक बार अपने छात्रों के दो समूहों को बुलाया। उन्होंने प्रत्येक समूह को तीस चूहे दिए और साथ में एक भूल–भुलैया वाली पहेली भी दी। उन्होंने छात्रों से कहा कि वह कुछ हफ़्तों में चूहों को भूल–भुलैया में से बाहर निकलना सिखाएँ। जाते वक्त उन्होंने एक समूह के कान में कहा कि उनको दिए गए चूहों का दिशा ज्ञान अच्छी तरह विकसित है। दूसरे समूह से उन्होंने चुपचाप कहा कि अनुवांशिक कारणों से उन्हें दिए गए चूहों से सफलता की ज़्यादा उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

असल में यह अंतर केवल छात्रों के दिमाग में था, क्योंकि सभी चूहे हर लिहाज में एक–जैसे थे। ट्रेनिंग की अवधि समाप्त होने पर प्रोफेसर ने पाया कि 'अच्छे करार' चूहों ने वास्तव में बहुत अच्छा किया और 'खराब करार' चूहे तो अपनी जगह से हिले तक नहीं।

इन नतीजों से प्रेरित होकर रोज़नथाल ने इसी प्रयोग को एक स्कूल में करने की ठानी। मई 1964 में रोज़नथाल और उनकी ठीम दक्षिण सैनफ्रांसिसको के एक प्राथमिक स्कूल में गई। यह गरीब इलाका था, जहाँ कम मज़दूरी मिलती थी। यहाँ पर मैक्सिकों, प्यूर्तो–रिको आदि देशों से आए लोग सरकारी अनुदान पर अपनी आजीविका चलाते थे। स्कूल में अधिकांश गरीब बच्चे थे।

शोध टीम ने स्कूल के टीचरों से साफ झूठ बोला। उन्होंने कहा कि वे हावर्ड विश्वविद्यालय से आए हैं और यह शोध वे नेशनल साइंस फाउंडेशन के लिए कर रहे हैं। इतने बड़े–बड़े नाम सुनकर शिक्षकों ने स्कूल के दरवाज़े उनके लिए खोल दिए। उन बच्चों का पता लगाने के लिए, जिनमें आगे बढ़ने की अद्‌भुत क्षमता थी, छात्रों को एक नए ढंग का टेस्ट दिया गया।

वास्तव में यह सब झूठ था। बच्चों की मानसिक क्षमता नापने के लिए उनको एक साधारण आई क्यू टेस्ट दिया गया। फिर हरेक कक्षा के 20 प्रतिशत बच्चों को बिना किसी मापदंड के, लॉटरी के आधार पर चुना गया। ' 'हावर्ड' के शोध पर आधारित नतीज़ों में अगर आपकी रुचि हो तो ... ?' शिक्षकों का इस प्रकार मानस बना देने के बाद शोध टीम आगे के हाल का इंतज़ार करती रही। चार महीने के बाद एक और टेस्ट, दूसरा एक साल बाद और अंतिम टेस्ट दो साल बाद दिया गया।

इन टेस्टों के नतीज़ों को देखकर रोज़नथाल और उनकी टीम एकदम आश्चर्य में रह गई। जो बच्चे कृत्रिम रूप से, अच्छा करने योग्य समझे गए थे, उन्होंने अन्य बच्चों की तुलना में कहीं अधिक तेज़ी से प्रगति की थी! दर्जनों में से अगर आप केवल दो ही उदाहरण लें। जोज़ नाम के मैक्सिकन बालक की 'प्रतिभाशाली' करार दिए जाने से पहले आई क्यू केवल 61 थी। एक साल बाद उसकी आई क्यू 106 हो गई थी। साल भर पहले जो बच्चा पिछड़ा हुआ था, वह एक कृत्रिम नया लेबल लग जाने मात्र से वाकई में मेधावी और गुणी बन गया था। मारिया नाम की एक मैक्सिकन लड़की में भी इसी तरह का अभूतपूर्व परिवर्तन आया। उसकी आई क्यू 88 से बढ़कर 128 हो गई। इन रोचक मिसालों के बारे में शिक्षकों का कहना था कि इन बच्चों में 'उत्सुकता', 'मौलिकता' और 'परिस्थितियों के अनुसार ढलने' की क्षमता थी।

जो बच्चे तेज़ी से आगे बढ़े उन सबकी प्रगति एक–जैसी नहीं थी। सबसे ऊंची प्रगति की छलांग सबसे छोटी आयु के बच्चों में पाई गई। इसका कारण शायद यह था, कि छोटे बच्चे अपने शिक्षकों से सबसे अधिक प्रभावित थे।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि शिक्षक की पक्षपातपूर्ण धारणाओं और मान्यताओं का बच्चों पर बेहद गहरा असर पड़ता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अच्छे और बुरे छात्र, शिक्षक ही बनाता है। टीम ने पाया कि 'अच्छे करार' बच्चों के साथ शिक्षक ने ज़्यादा बातचीत की, और शायद यही बच्चों की प्रगति का राज़ था। परंतु अंत में टीम को इस मान्यता को नकारना पड़ा। बाकी टेस्टों से पता चला कि इन बच्चों ने न केवल भाषा में परंतु तार्किक बुद्धि में भी प्रवीणता हासिल की थी। एक कृत्रिक लेबल ने 'पिछड़े' बच्चों को 'होशियार' बना दिया था।

इसका सार यही है कि अगर शिक्षक का छात्र की सफलता में पक्का विश्वास होगा तो बच्चा अवश्य सफल होगा। शिक्षा में शायद यह सबने सस्ता सुधार होगा। परंतु इसे लागू करना उतना ही मुश्किल काम होगा।

स्कूल के बाहर की ज़िंदगी के अनुभव

बच्चों व नौजवानों की ज़िंदगी का एक अहम पहलू वे अनुभव हैं जो वे स्कूल से बाहर हासिल करते हैं।

लेकिन अलग–अलग वर्गों के बच्चों के यह अनुभव भी अलग होते हैं। और आमतौर पर संपन्न वर्ग के बच्चों के अनुभव स्कूली शिक्षा के अनुरूप ही होते हैं और इस वज़ह से उनकी शिक्षा में इनका योगदान रहता है।

पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य पत्र–पत्रिकाएँ, देश–विदेश का साहित्य आदि पड़ना, सैर सपाटा, नाटक, पेंटिंग, संगीत से संपर्क व सामाजिक वर्ग के अनुरूप टी. वी. के कार्यक्रम – ये सब स्कूल में सफलता दिलाने में सहायक बनते हैं। इन अनुभवों के विपरीत श्रमिकों या किसानों के बच्चों के अनुभवों का स्कूली शिक्षा से कोई लेना–देना नहीं होता, चाहे वे इन सब अनुभवों जैसे ही महत्वपूर्ण क्यों न हों!

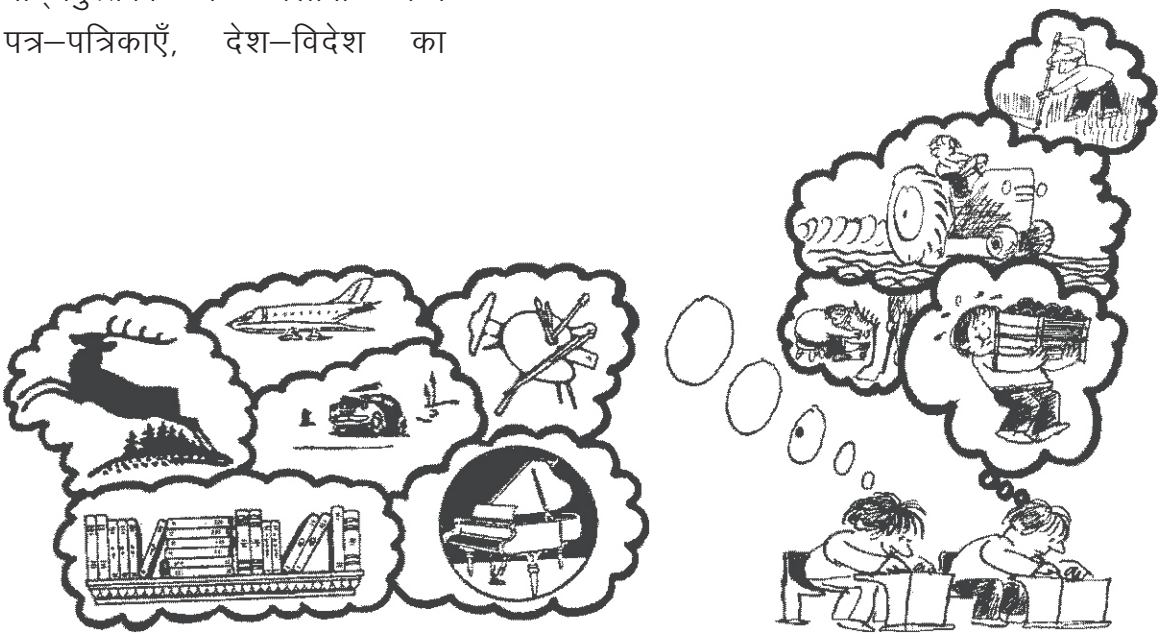

खतरा स्कूल! (2006), भारत ज्ञान विज्ञान समिति

पाठ-2

अशोक की कहानी

अशोक पढ़ना चाहता था। उसके परिवार में कभी कोई स्कूल नहीं गया था। पिता ज़मीन के छोटे–से टुकड़े पर खेती करते थे, अनपढ़ थे। अशोक ने कई बार ज़िद की, माँ को मनाया, और अंत में पिता मान गए कि उसे पास के कस्बे में प्राइमरी स्कूल में भरती करा देंगे।

पहले दर्ज़े में हिंदी के अंतर्गत अध्यापिका ने वर्णमाला सिखाई। एक–एक अक्षर की आवाज़ हफ्तों रटाई; अक्षरों की आकृति बनाना सिखाया। स्कूल में एक छोटा–सा ब्लैकबोर्ड था– खूब घिसा हुआ, चाक के बारीक कणों से इस कदर ढँका हुआ कि लिखाई देखने के लिए सिर की नसों का सारा ज़ोर पुतली पर केन्द्रित करना होता था। यह ब्लैकबोर्ड अगस्त से अक्तूबर तक वर्णमाला की आकृतियों से ढँका रहा। बच्चे एक–एक अक्षर की आकृति बीसियों बार उतारते। इस तरह अंत में अशोक ने सारी हिंदी वर्णमाला सीख ली।

अब अध्यापिका ने पाठ्यपुस्तक की तरफ ध्यान दिया, जिसमें हर अक्षर के पास एक शब्द लिखा था और एक चित्र बना था। ''क'' के पास लिखा था ''कबूतर''। अशोक शुरू से जानता था कि ''क'' का मतलब होता है कबूतर। इसलिए जब बहनजी ने अक्षर जोड़कर कबूतर पढ़ना सिखाना चाहा तो अशोक बहुत खुश हुआ, पर उसे यह नहीं समझ में आया कि दरअसल बहनजी के लिए ''क'', ''बू'', ''त'' और ''र'' का कुल योग ''कबूतर'' है। अशोक के दृष्टिकोण से ''क'' ही ''कबूतर'' था। बहनजी के पास इतना समय नहीं था कि अशोक का दृष्टिकोण समझें। ''अशोक का भी कोई दृष्टिकोण है''– यह बात वे जानती थीं या नहीं, मैं नहीं कह सकता। बहरहाल उन्होंने सोचा कि अशोक 'क' के साथ लिखे शब्द को देखकर ''कबूतर'' कह रहा हे तो वह पढ़ना सीखने लगा है।

इसी तरह अशोक ने बाकी सब अक्षरों के साथ लिखे शब्द पढ़ना सीख लिया। अक्षरों की आकृतियाँ स्लेट और कापी पर उतारना तो वह पहले ही सीख चुका था। पहले दर्ज़े का अंत होते–होते वह अपनी प्रगति से काफी खुश था। जब वह दूसरी में आया और कक्षा में उसे किताब पढ़ने को कहा गया तो वह तरह बोला– ''कबूतर का क, मटर का म, लंगूर का ल, क–म–ल।'' हर बार उसे इस

तरह पढ़ते देखकर अध्यापिका कुछ नाराज़ हुई। अशोक के हर प्रयास के बाद अध्यापिका उससे कहती, ''दूसरे बच्चों को ध्यान से सुनो। उनकी तरह पढ़ो।'' अशोक दूसरे बच्चों को ध्यान से सुनता, पर यह समझने में असमर्थ रहता कि वह कहाँ गलती कर रहा है। उसे लगता कि दूसरे ठीक उसकी तरह पढ़ रहे हैं। वही शब्द वे पढ़कर सुना रहे हैं। फिर बहनजी उससे क्यों नाराज़ हैं? सौभाग्यवश बहनजी और भी कुछ बच्चों पर खीझती थीं, इसलिए अशोक अपने को एकदम अकेला नहीं पाता था। किसी तरह उसने दूसरी कक्षा के सारे दिन काट लिए। धीरे–धीरे उसकी 'क' से 'कबूतर' कहने की आदत भी कम हो गई। अब वह इस तरह पढ़ता था–

ग पे उ की मात्रा गु

ल पे आ की मात्रा ला

ब

क पे आ की मात्रा का

फ पे बड़े उ की मात्रा फू

ल

गु–ला–ब का फू–ल

बहनजी उसे कभी–कभार ही पढ़ने को कहतीं, अक्सर उनके पास की टाट–पट्टी पर बैठे बच्चे ही पूरा पाठ पढ़ देते। पर अशोक इस बात से उदास नहीं था। उसने एक पूरी कविता याद कर ली थी। दूसरी कक्षा के अंतिम दिनों में जब किताब दोहराते वक्त इस कविता को पढ़ने का नंबर आया तो अशोक ने बगैर सही पेज खोले पूरी कविता पढ़कर सुना दी। बहनजी उससे गुस्सा थीं कि उसने सही पेज क्यों नहीं खोला। अशोक खुश था कि वह बिना किताब देखे पढ़ने लगा है। उसके और बहनजी के दृष्टिकोणों का विरोध तीखा होता जा रहा था।

आखिरकार तीसरी कक्षा शुरू हुई। अशोक के गाँव के कई बच्चे स्कूल आना छोड़ चुके थे। उस पर भी दबाव पड़ा, पर वह अड़ा रहा। वह चाहता था कि जल्दी–जल्दी स्कूल खत्म करके पैसे कमाए। बहनजी कई बार कक्षा में बता चुकी थीं कि जो बच्चे स्कूल में आगे बढ़ते रहेंगे वे खूब बड़े आदमी बनेंगे और पैसे कमाएँगे।

पर तीसरी कक्षा की शुरूआत में ही विघ्न पड़ने लगे। ''भूगोल'' नाम का एक नया विषय शुरू हुआ। अशोक को भूगोल की किताब में कुछ पल्ले नहीं पड़ा। पहले पेज पर लिखा था, ''हमारा ज़िला ऊबड़–खाबड़ और पथरीला है।.... यह कर्क रेखा से कुछ ऊपर स्थित है। इसकी भू–रचना पठारी

प्रकार की है।'' कक्षा के कई बच्चे फर्राटे से पढ़ना सीख चुके थे। वे खड़े होकर पढ़ते, फिर कापी में उतारते। अशोक धीरे–धीरे पढ़ने की कोशिश करता तो बहनजी अधीर हो उठती। यही हालत एक और नए विषय ''विज्ञान'' की घंटी में आई। महीने भर में बहनजी अशोक से इतना परेशान हो गईं कि उन्होंने उससे कुछ भी कहना छोड़ दिया। उनकी अधीरता और नाराज़गी का धागा, जिससे अशोक अभी तक बँधा नहीं था, उदासीनता में बदल गया। अशोक को लगा कि बहनजी को अब उससे कोई मतलब नहीं हे। दीवाली की छुट्टी के बाद वह वापिस स्कूल नहीं गया।

कुछ वर्ष बाद ज़िले में एक सर्वेक्षण हुआ। प्रांतीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद की ओर से दो सर्वेक्षक लंबे–लंबे फार्म लेकर आए। सर्वेक्षण का उद्देश्य यह पता लगाना था कि प्राथमिक शिक्षा में ''ड्राप आउट'' की दर इतनी ऊँची क्यों है। सर्वेक्षकों ने कई गाँव चुने और वहाँ जाकर माता–पिताओं से इंटरव्यू लिए। इस तरह स्कूल छोड़ने वाले कई सैंकड़ा बच्चों के आँकड़े उनके शैक्षिक अनुसंधान की पकड़ में आ गए।

शिक्षा का कोई सर्वेक्षण हो रहा है, यह मुझे मालूम था। जब मुझे सर्वेक्षण का ठीक–ठाक उद्देश्य मालूम हुआ तो मैं आलस त्यागकर अपना कौतूहल लिए सर्वेक्षकों से मिलने जा पहुँचा। उनका काम पूरा हो चुका था और वे जाने की जल्दी में थे। मैंने आग्रह किया कि वे मुझे अशोक की ''डेटा–शीट'' दिखा दें। मैं यह जानने को बेहद उत्सुक था कि देश के आँकड़ों में अशोक का ''केस'' किस तरह प्रस्तुत होगा। सैकड़ों बच्चों के पिताओं की ''डेटा–शीट'' में से एक को ढूँढ निकालने में सर्वेक्षण बंधु आनाकानी कर रहे थे। मैंने बातचीत के दौरान अपनी हैसियत और डिग्री का ज़िक्र किया तो वे तैयार हो गए। ढूँढते–ढूँढते जब अशोक के पिता की ''डेटा–शीट'' मिली तो उसे पढ़कर यह साफ निष्कर्ष निकलता था कि अशोक ने अपने परिवार की आर्थिक स्थिति के संदर्भ में अपने पिता का हाथ बँटाने के लिए पढ़ना छोड़ा। सर्वेक्षण के समूचे विश्लेषण में अशोक की गणना ''परिवार की आर्थिक स्थिति'' से प्रभावित ''ड्राप आउट'' बच्चों में की गई। अशोक एक ग्रामीण बाल श्रमिक घोषित हुआ।

मेरी आँखों में आँसू देखकर सर्वेक्षण बंधु कुछ घबरा गए। वे बोले– ''क्या यह बच्चा आपके रिश्ते में आता है?'' मैंने कहा– ''नहीं, पर मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ। मुझे लगता है आप उसका केस ठीक से समझ नहीं पाए।'' सर्वेक्षक ने कहा– ''अब एक केस को कहाँ तक समझ जाए?'' फिर बात कुछ बदलकर वह बोला– ''आप तो दिल्ली में रहते हैं। नई शिक्षा नीति कब से लागू होने वाली है?''

– प्रो. कृष्ण कुमार
भूतपूर्व निदेशक, एनसीईआरटी

इकाई-2

शिक्षा के लिए मातृभाषा क्यों?

Source: कलाम अ (2015), कक्षा में बहुभाषिता और शिक्षक की भूमिका। Teachers of India

पाठ–3

'वो' और 'उनकी' भाषा

जनजातीय समुदायों के बच्चों के बारे में गैर–जनजातीय पृष्ठभूमि वाले अध्यापकों के पूर्वग्रहों पर कई अध्ययन हो चुके हैं। नीचे दिए गए दो अध्ययनों के अंश दिखाते हैं कि आदिवासी बच्चों के प्रति भेदभाव और पूर्वग्रह कितने गहरे हैं।

स्टडी–1 (तुम बंदर हो)

ओडिशा के गजपति जिले में एक प्राथमिक स्कूल अध्यापक से जब पूछा गया कि आदिवासी बच्चों के प्रति गैर–आदिवासी अध्यपकों का रवैया और व्यवहार कैसा होता है तो उसने अपने स्कूली जीवन को याद करते हुए कहा : मेरा मास्टर बेहरामपुर कस्बे से आता था। वह सवर्ण जाति से था। जब मैं मानक उड़ीया भाषा में पूछे गऐ उसके प्रश्नों को नहीं समझ पाता था जो वह फौरन तैश में आ जाता था। एक बार उसने कहा, ''तुम जो जंगली बंदर हो, तुम स्कूल में क्या करने आए हो? मैं जो पढ़ा रहा हूँ वो तुम्हारे भेजे में कभी नहीं घुसने वाला है। तुम्हारी तो सात पुश्तें जंगलों में बीती हैं। तुम तो पूरे के पूरे बंदर हो। तुम्हें कोई इंसान नहीं बना सकता।''

स्टडी–2 (आदिवासी बच्चों के घर के माहौल को जिम्मेदार ठहराना)

''सारे माँ–बाप बराबर नहीं हैं। वे पढ़े लिखे तो हैं नहीं। वनवासी हैं। सो माँ–बाप को भी काई परवाह नहीं है। वे अपने बच्चों की हमारी तरह देखभाल नहीं करते। उन्हें तो बस मस्ती करने, खाने, पीने और शादियों के जश्न मनाने से ही फुरसत नहीं है।'' (महाराष्ट्र में किए गए एक अध्ययन के अंश)

आम धारणा है कि ''ऐसे'' बच्चे इसीलिए नहीं सीख पाते क्योंकि वे किसी पिछड़ी जाति से होते हैं या उनके माँ–बाप गरीब दिहाड़ी मजदूर और निरक्षर होते हैं। बहुत सारे अध्यापक तथा शिक्षा व्यवस्था से जुड़े अन्य लोग अकसर इसी बात की दुहाई देते हैं। यह 'पीड़ित ही दोषी है' वाली सोच का नमूना है। यह मान लेना आम बात है कि इन बच्चों के सामने सीखने में जो समस्याएँ पेश आ रही हैं वे

उनकी जाति या उनकी अभावग्रस्त जीवन परिस्थिति की वजह से हैं। ऐसे पूर्वाग्रह और नकारात्मक छवियाँ सिर्फ निचली जातियों और जनजातीय समुदायों तक ही सीमित नहीं है। ग्रामीण और शहरी इलाकों के कम आमदनी वाले और कम पढ़े–लिखे परिवारों (जैसे दिहाड़ी मजदूर माता–पिता) के बच्चों को भी इसी तरह से अपमानित किया जाता है।

मुख्यधारा के समूहों की सोच में निम्न सामाजिक–आर्थिक हैसियत वाले समूहों के बारे में पूर्वग्रह एक आम बात है। ये पूर्वग्रह इन वंचित सामाजिक समूहों की संस्कृति, भाषा और दुनिया के नजरिये (वर्ल्ड व्यू) के बारे में कम जानकारी और उन्हें समझने की अनिच्छा से पैदा होते हैं। ये पूर्वग्रह इन समूहों में जन्मजात कमजोरियों की धारणा (भाषा, सांस्कृतिक या धार्मिक व्यवहार, व्यवसायों के स्वरूप, निरक्षरता आदि) को भी जन्म देते हैं। जब एक बार ऐसे समूहों को 'हीन' और अपने बच्चों की शिक्षा के प्रति लापरवाह घोषित कर दिया जाता है तो उनके बच्चों की कम शैक्षिक उपलब्धि की समस्या 'हम' सबकी नहीं बल्कि 'उनकी' समस्या बनकर रह जाती है। उनके बच्चों को 'बेदिमाग', 'धीमा/स्लो', 'पढ़ाई में दिलचस्पी नहीं लेने वाले' और अंत में 'विफल' कहा जाने लगता है।

इन्हीं पूर्वग्रहों के चलते अध्यापक तथा शिक्षा व्यवस्था से जुड़े बहुत सारे अन्य लोग यह नतीजा निकाल लेते हैं कि ऐसे समूहों के बच्चों के पास सीखने की क्षमता कम होती है। लिहाजा, अध्यापक भी उनसे थोड़ा–बहुत ही सीख पाने की उम्मीद करने लगते हैं। उनके माँ–बाप पर (और कई बार पूरे समुदाय पर, जैसे आदिवासियों पर) यह आरोप मढ़ दिया जाता है कि वे अपने बच्चों की पढ़ाई में दिलचस्पी नहीं लेते या उन्हें मदद नहीं देना चाहते।

'अन्य' समूहों (जो प्रायः सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टि से हाशिये पर होते हैं) की भाषा के बारे में इस तरह का नकारात्मक रवैया सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं है। अमेरिका में भी अश्वेत और कुछ अल्पसंख्यक समूहों की बोलयों को 'घटिया अंग्रेजी' माना जाता रहा है और उन्हें नीची नजर से देखा जाता है। अमेरिका में होने वाले कई शोधों में भी इस बात को बताया गया है कि किस तरह कई अध्यापक अश्वेतों की भाषा को 'भाषा ही नहीं' मानते और उनके हिसाब से यह भाषा 'तर्कशील चिंतन के लायक नहीं है।' ऐसे पूवग्रह सिर्फ भाषा के सवाल तक ही सीमित नहीं है। कक्षा के भीतर अपनी भाषा में बोलने वाले अश्वेत बच्चों को 'अतार्किक' और 'गैर–अवधारणात्मक सोच वाला' माना जाता रहा है। यानी, यह लेबलिंग केवल भाषा तक ही सीमित नहीं रहती। मानक भाषा से भिन्न भाषा का इस्तेमाल करने वालों को तार्किक सोच में ही अक्षम मान लिया जाता है क्योंकि कथित रूप से उनकी भाषा 'अपर्याप्त' होती है। नीचे अमेरिका के अल्पसंख्यक एपेलेचिन समुदाय की एक लड़की की आपबीती को पढ़ने पर पता चलता है कि भाषा और उच्चारण का फर्क किस प्रकार किसी बच्चे के सीखने के आत्मविश्वास को नष्ट करने का जरिया बन सकता है।

जब मैं जूनियर (हाईस्कूल) में थी तो मेरे मम्मी–डैडी ओहायो आकर बस गए थे। मेरे लिए यह बदलाव बड़ा मुश्किल साबित हुआ। मैं नए स्कूल में तो जाने लगी मगर वहाँ फिट नहीं हो पायी। घर पर (केन्टकी) मैं पढ़ाई में काफी अच्छी थी। बल्कि अपनी उम्र के हिसाब से एक साल आगे ही थी। मगर जब मैं वहाँ (ओहायो) आयी तो सभी कुछ अलग तरह का था। कभी–कभी मुझे समझ में ही नहीं आता था कि अध्यापिका ने क्या बोला। वे बहुत तेज बोलती थीं और शब्दों को अलग ढंग से कहती थीं। सबसे बुरी बात यह थी कि वे मेरे उच्चारण का मजाक उड़ाती थीं। एक दफे मेरी अध्यापिका ने मुझसे कहा कि मैं पूरी कक्षा के सामने बोल–बोलकर पढ़ूँ ताकि मुझे पढ़ने में मदद मिले। मैं पढ़ सकती थी मगर उनके हिसाब से मैं शब्दों को सही ढंग से नहीं बोल पायी। जब भी मैं कोई शब्द गलत कहती तो वह मुझे उसी शब्द को बार–बार दोहराने के लिए बोलतीं। मैंने भरपूर कोशिश की। सच में कोशिश की। पर मैं नहीं कर पायी। तकरीबन हर रोज मैं रोती हुई घर लौटती। मेरी अध्यापिका सबके सामने मुझे बेवकूफ बुलाती थी। वह बोलती थी कि मैं अनपढ़ हूँ, कभी कुछ नहीं सीख सकती, मेरे से कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। मैं इस अनुभव को कभी नहीं भूल पाऊँगी। कभी भी नहीं...। तब उन्होंने (मम्मी और डैडी) ने मुझे वापस (केन्टकी) आ जाने दिया। उनको मालूम था कि मैं उस स्कूल में एक साल और नहीं रह पाऊँगी। मुझे अभी भी पहाड़ों के बाहर जाने से नफरत है। वहाँ के बहुत सारे शब्द मैं अब नहीं बोलती क्योंकि मैं उन्हें ठीक से नहीं बोल पाती। जैसे फ्र–स्ट्रे–टेड। मैं इस शब्द को बोलने की कभी कोशिश भी नहीं करूँगी।

जिम कमिन्स का कहना है कि ''स्कूल में किसी बच्चे की भाषा को खारिज करना बच्चे को खारिज करने के बराबर है। जब परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से, बच्चे को यह संदेश दिया जाता है कि अपनी भाषा और संस्कृति को स्कूल के द्वार के बाहर छोड़कर ही भीतर आया करो तो बच्चे अपनी भाषा और संस्कृति ही बाहर छोड़कर नहीं आते, बल्कि वे क्या हैं, इसका एक बहुत केंद्रीय अंश – अपनी पहचानें – भी स्कूल के बाहर छोड़ आते हैं। जब वे इस उपेक्षा को महसूस करने लगते हैं तो इस बात की उम्मीद बहुत कम ही रह जाती है कि वे कक्षा शिक्षण में सक्रिय और विश्वासपूर्वक हिस्सा ले पाएँगे।''

पाठ-4

घर और स्कूल की भाषा में अंतर – एक गंभीर समस्या

हमारी भाषा पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकें यह मानकर तैयार की जाती हैं कि बच्चे स्कूल की भाषा को भली–भांति जानते हैं और वे उस भाषा में आराम से बात कर सकते हैं। कक्षा 1 में दाखिला लेने के समय, जिन बच्चों के पास स्कूली भाषा की समझ सीमित होती है, उनकी स्थिति के बारे में अध्यापक अच्छी तरह जानते हैं, मगर वे भी स्कूली भाषा सीखने में बच्चों की प्रथम भाषा[1] का असरदार ढंग से इस्तेमाल नहीं कर पाते। कुछ स्थितियों में बच्चों की प्रथम भाषा को कमतर और कक्षा में इस्तेमाल के लायक ही नहीं समझा जाता है। जिन बच्चों को किसी ऐसी भाषा के माध्यम से पढ़ना पड़ता है जिससे वे परिचित नहीं हैं, उन्हें भारी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। वे स्कूली भाषा में पढ़ाई जा रही चीज़ों को समझ नहीं पाते और समय के साथ कम सीख पाने का फासला बढ़ता भी चला जाता है। वे कक्षा प्रक्रियाओं और विषयवस्तु से भी अलग–थलग महसूस करने लगते हैं क्योंकि इसका उनके वास्तविक जीवन अनुभवों और संस्कृति से कोई लेना–देना नहीं होता। ऐसे बहुत सारे बच्चे बिना कुछ खास सीखे एक के बाद दूसरी कक्षा में आते रहते हैं और उनमें से कुछ बच्चे जल्दी ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। कई संदर्भों में बच्चों की घर की या प्रथम भाषा उनकी पढ़ाई के माध्यम से बहुत भिन्न नहीं होती या वे कुछ हद तक स्कूली भाषा समझते हैं। मगर हमारी भाषा शिक्षण की पद्धतियाँ ऐसे बच्चों के लिए भी पढ़ना–लिखना सिखाना प्रारंभ करने से पहले स्कूली भाषा की अच्छी समझ विकसित करने के लिए पर्याप्त समय नहीं देती।

1. **प्रथम भाषा**– बच्चों की प्रथम भाषा– यह वह भाषा है जिसे बच्चे स्कूल में दाखिले के समय भली–भांति समझते और बोलते है। इस किताब में हमने कई जगह L1, मातृभाषा और घर की भाषा को एक–दूसरे के समकक्ष के रूप में प्रयोग किया है।

अध्यापक के एकालाप में बच्चों की दिलचस्पी कतई नहीं दिखाई दे रही थी। वे सूनी आँखों से अध्यापक की तरफ देखे जा रहे थे; कभी–कभार ब्लैकबोर्ड पर लिखे अक्षरों को देख लेते थे। अध्यापक को भी अच्छी तरह समझ में आ रहा था कि बच्चों को उसकी बात पल्ले नहीं पड़ रही है, लिहाजा उसने और ऊँची आवाज़ में तथा ज्यादा विस्तार से समझाने की कोशिश की। आखिरकार जब वह बोलते–बोलते थक गया और उसे इस बात का अच्छी तरह अहसास हो गया कि बच्चों को उसकी बात रत्ती भर भी समझ नहीं आयी है तो उसने उन्हें ब्लैकबोर्ड पर लिखे अक्षरों को अपनी–अपनी कॉपियों में उतारने के लिए कह दिया। बाद में इस अध्यापक का कहना था कि ''मेरे बच्चे लिखने में बड़े तेज रहते हैं। पांचवी कक्षा तक पहुँचते–पहुँचते वे सारे उत्तरों को उतार सकते हैं और उन्हें याद कर लेते हैं। मगर कक्षा पाँच के केवल दो बच्चे ही वास्वत में हिंदी बोल सकते हैं।''

(मध्य प्रदेश के छिदंवाडा जिले में स्थित एक सुदूर आदिवासी इलाके की कक्षा 2 के कक्षा अवलोकन के नोट्स : धीर झिंगरन 2005)।

समस्या गंभीर है!

बच्चों के घर और स्कूल की भाषा अलग होना

↓

स्कूल में बच्चों की घर की भाषा(ओं) को कमतर मानना

↓

सीखने–सिखाने में बच्चों की घर की भाषा(ओं) का प्रयोग न करना

↓

कक्षा में बच्चों को कुछ भी ठीक से समझ न आना

↓

बच्चों के मन में आत्मविश्वास की कमी और शिक्षक से दूरी की भावना पैदा होना

↓

अधिगम फासला लगातार बढ़ना

↓

स्कूली व्यवस्था में बच्चों का पिछड़ना या ड्रॉपआउट हो जाना

पाठ-5

शुरूआती कक्षाओं में बच्चों की प्रथम भाषा का महत्व

1. भाषा सोचने, समझने और सीखने का एक साधन है। बच्चे केवल उस भाषा के माध्यम से ही अवधारणाओं को समझ ओर उनके बारे में सोच सकते हैं जिसे वे अच्छी तरह जानते हैं। (वैसे, क्या यह बात हम सभी के लिए भी सच नहीं है?) इसका मतलब यह है कि बच्चों को पढ़ाने के लिए इस्तेमाल की जा रही भाषा की उनके पास एक बढ़िया समझ होनी चाहिए या बढ़िया समझ विकसित की जानी चाहिए।

जब बच्चे भाषा सीखते हैं तो वे सिर्फ़ एक विषय नहीं सीख रहे होते बल्कि वे सीखने की आधारशिला सीख रहे होते हैं।

2. बच्चों को ज्ञात से अज्ञात, परिचित से अपरिचित की और बढ़ना चाहिए (NCF 2005)। जिस भाषा को बच्चे सबसे अच्छी तरह समझते हैं (यानी उनकी प्रथम भाषा), उसका इस्तेमाल न करके हम उनके सीखने की प्रक्रिया को अज्ञात से ही शुरू करवा देते हैं। यदि कक्षा में उस भाषा को जगह मिले जो बच्चों को आती है तो घर की भाषा से स्कूल की भाषा की तरफ उनका संक्रमण इतना मुश्किल नहीं होगा। इससे कक्षा भी ज़्यादा बाल केंद्रित बन जाएगी।

3. साक्षरता कौशल सबसे आसानी से प्रथम भाषा में ही सीखे जा सकते हैं। पढ़ने का मतलब है 'समझकर पढ़ना'। अगर बच्चों के पास पढ़ाई और सीखी जा रही भाषा की बढ़िया समझ है तो डीकोडिंग कौशल के विकास के फलस्वरूप वे 'समझते हुए पढ़ने' की क्षमता भी हासिल कर लेंगे। यदि भाषा समझने की उनकी क्षमता कमज़ोर है (जोकि उन बच्चों के मामले में अकसर दिखाई पड़ता है जो स्कूल की भाषा से परिचित नहीं होते हैं) तो केवल डिकोडिंग कौशल सिखा देने से भी 'समझकर पढ़ने' की बढ़िया क्षमता विकसित नहीं की जा सकती।

आजकल 'रचनावाद' (Constructivism/कॅन्स्ट्रक्टिविज़्म) की बहुत चर्चा सुनाई पड़ती है। इसका आशय यह है कि हम ऐसी पाठ्यचर्या और शिक्षण को बढ़ावा दें जिसमें बच्चों को अपने पिछले ज्ञान व अनुभवों और कक्षा में मिले शैक्षिक अनुभवों के आधार पर खुद ज्ञान रचने के लिए प्रोत्साहन मिले। मगर, इस बारे में कोई बात नहीं करता कि अगर बच्चे कक्षा में इस्तेमाल हो रही भाषा को समझते ही न हों या केवल आंशिक रूप से ही समझ पाते हों तो वेअपने दम पर भला किस तरह ज्ञान रच पाएँगे? (धीर झिंगरन, 2009)

4. शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बच्चों की भाषा का समावेश करने से उनकी पहचान, संस्कृति, भाषा और अब तक अर्जित किए गए ज्ञान को मान्यता व सम्मान मिलता है। इससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है और स्कूल परिवारों व समुदायों के और निकट आ जाता है।

5. बच्चों को स्कूल की भाषा में निपुणता हासिल करने के लिए समय की ज़रूरत होती है। मगर अफ़सोस, हमारे स्कूली तंत्र में बच्चों को स्कूली भाषा की बढ़िया समझ हासिल करने के लिए कोई समय नहीं मिलता। उन्हें लगभग पहले दिन से ही स्कूल की भाषा में ही पढ़ने और लिखने का काम सौंप दिया जाता है। दूसरे विषयों की पढ़ाई का माध्यम भी वही भाषा होती है। दूसरी तरफ, अगर बच्चों की भाषाओं का इस्तेमाल किया जाए तो उन्हें प्रथम भाषा के सहारे स्कूल की भाषा को सीखने के लिए बड़ी अच्छी मदद की जा सकती है।

6. जो बच्चे पहले L1 में पढ़ना और लिखना सीखते हैं, उनका संज्ञानात्मक विकास बेहतर होता है। हमारे देश में किए गए कुछ अध्ययनों में पाया गया है जिन आदिवासी बच्चों की पढ़ाई उनकी अपनी भाषा में हुई है उनका भाषा और गणित में प्रदर्शन ऐसे बच्चों के मुकाबले बेहतर रहता है जो मातृभाषा की बजाय किसी अन्य भाषा के माध्यम से पढ़कर आए हैं (साइकिया एवं मोहंती, 2004)।

शिक्षण के माध्यम के तौर पर बच्चों की भाषा का इस्तेमाल न तो हमेशा ज़रूरी होता है और न ही यह हर संदर्भ में व्यवहारिक है। अहम बात यह है कि कक्षा में बच्चों की भाषाओं को एक सम्मानजनक जगह मिलें। बच्चों को अपनी बात को अच्छी तरह कहने के लिए अपनी भाषा क्षमता/संसाधनों का लचीले ढंग से इस्तेमाल करने की छूट दी जानी चाहिए। इसका मतलब है कि भाषाओं को 'विशुद्ध' एकभाषिक परिवेश में पढ़ाए जाने वाले विषयों के तौर पर बिल्कुल अलग–अलग रखकर नहीं देखा जाना चाहिए।

भाषा सोचने, समझने और सीखने का एक साधन है।
बच्चों को ज्ञात से अज्ञात, परिचित से अपरिचित की ओर बढ़ना चाहिए।
साक्षरता कौशल सबसे आसानी से प्रथम भाषा में ही सीखे जा सकते है।
शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में बच्चों की भाषा का समावेश करने से उनकी पहचान, संस्कृति, भाषा और अब तक अर्जित किए गए ज्ञान को मान्यता व सम्मान मिलता है।
बच्चों को स्कूल की भाषा में निपुणता हासिल करने के लिए समय की ज़रूरत होती है।
जो बच्चे पहले L1 में पढ़ना और लिखना सीखते हैं, उनका संज्ञानात्मक विकास बेहतर होता है।
शुरूआती कक्षाओं में बच्चों की प्रथम भाषाओं का महत्व

पाठ–6

मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा क्यों?

गुणवत्तापरक शिक्षा की बात करनी तभी सार्थक और संभव है जब उसका जुड़ाव मातृभाषा से हो यानि कि अच्छी शिक्षा की शुरूआत मातृभाषा से ही होती हैं। मातृभाषा में मजबूत पकड़ होना प्रभावशाली शिक्षा और कई भाषाओं में उच्च स्तरीय निपुणता को सुनिश्चित करता है। हमारे संविधान द्वारा मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी ली गई है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 भी मातृभाषा में शिक्षा देने की हर संभव सिफारिश करती है। निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा एक्ट, 2009 के प्रति बच्चों के अधिकार में भी यही बात दोहराई गई है। हालाँकि बहुत से बच्चों, खासकर आदिवासी और अल्पसंख्यक भाषिक समुदायों के बच्चों के लिए उनकी मातृभाषा में शिक्षा मुहैया करने के लिए अभी तक किसी तरह की सुविधाएँ जुटाई नहीं जा सकी हैं। स्कूल की समझ में न आने वाली अंजानी अजनबियत भरी भाषा का बोझ लादे ये बच्चे जहाँ एक तरफ घोर असफलता का सामना करते हैं तो दूसरी ओर विद्यालयी शिक्षा की परिधि से बाहर धकेले जाने का दुःख भी सहन करते हैं। सभी बच्चों को गुणवत्ता परक शिक्षा देने के लिए कम से कम 6 से 8 वर्षों के लिए मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा को अपनाना होगा।

जब बच्चे विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं, वे अपनी मातृभाषा की बारीकियों को अच्छी तरह से जानते हैं और समझते हैं। फिर दुबारा 6–8 वर्षों के लिए अपनी मातृभाषा में पढ़ाई करने की क्या ज़रूरत है?

पाँच छह वर्ष की उम्र में जब बच्चे विद्यालय में प्रवेश लेते हैं, वे रोजमर्रा से जुड़ी स्थितियों के बारे में अपनी मातृभाषा में बात करते हैं। बच्चे अपने मौजूदा संदर्भों में जो भी देखते हैं, सुनते हैं और छूकर महसूस करते हैं, वे इन सभी अनुभवों को अपनी मातृभाषा में ही अभिव्यक्त करते हैं। बड़े यानि कि वयस्क उन्हें सही भाषा का प्रयोग करने के संकेत देते रहते हैं (वह कुत्ता नहीं बिल्ली है)। स्कूल जाने की उम्र वाले बच्चे अपनी बात स्पष्ट और सही तरीके से कह लेते हैं। उनका शब्द–भंडार बहुत

समृद्ध हो चुका होता है और वे अपनी मातृभाषा की व्याकरण की बारीकियों को भी बखूबी समझते हैं। वे अपने अनुभवों, ज़रूरतों और आसान से विचारों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखते हैं। उनमें सामाजिक संप्रेषण या बुनियादी पारस्परिक (आपसी) संप्रेषण के लिए काम आने वाली आवश्यक क्षमता मौजूद होती है। बच्चे जब विद्यालय में प्रवेश लेते हैं, तब यह सभी क्षमताएँ आवश्यक रूप से पर्यापत होती हैं क्योंकि आमतौर पर पहली कक्षा में पढ़ाई–लिखाई की शुरूआत बच्चों के पास पहले से ही मौजूद अनुभवों और ज्ञान पर आधारित होती है। जैसे–जैसे बच्चे आगे की कक्षाओं में जाते हैं, उन्हें नए शब्दों, कठिन सूचनाओं और अनजान विचारों को सीखने–समझने की ज़रूरत पड़ती है, जिन्हें न तो वे अब तक स्वयं देख पाए हैं और न ही जिनका अनुभव कर पाए हैं। सीखने की इस प्रक्रिया से जुड़ने के लिए बच्चों को सीधे सरल सामाजिक संप्रेषण कौशल से कहीं आगे जाने की और अपेक्षाकृत कुछ जटिल बौद्धिक मानसिक गतिविधियों से जुड़ने की ज़रूरत होती है। विद्यालयों में बच्चे से अपेक्षा की जाती है कि वे उन अनजान विचारों को सीखे जो प्रत्यक्ष रूप से संभवतया उनके अनुभवों में शामिल नहीं हो पाए हैं। (जैसे– ईमानदारी, न्याय, अन्याय)। बच्चों से विज्ञान और गणित की कई उच्च स्तरीय अवधारणाओं और ऐसे तथ्यों (जैसे– इतिहास या भूगोल में) को समझने की उम्मीद की जाती है जिनका उनके आस–पास के संदर्भों से किसी भी तरह का जुड़ाव नहीं होता है। स्कूली व्यवस्था को बच्चों से इस बात की भी अपेक्षा रहती है कि वे इन सभी जटिल सूचनाओं को सीखें और समझें, साथ ही उनके बारे में लिखें और बोलें भी। **स्कूली शिक्षा में भाषा का प्रयोग सिर्फ सामाजिक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, भाषा को विस्तार देने (जैसे– शब्द से वाक्य बनाना) और तर्क देने व समस्या समाधान के रूप में प्रयोग करना सिखाना भी ज़रूरी है।** (जैसे– किसी एक मात्र में और अधिक जोड़ देने से यह कम न होकर अधिक होगी ओर घटाने में भी यही नियम लागू होगा)।

''जब तुम दो मात्राओं को जोड़ते हो तो यह अधिक होगी, कम नहीं, इसलिए यहाँ मुझे घटाना होगा।'' जैसे–जैसे बच्चे प्राथमिक कक्षाओं में बढ़त लेते हैं ओर शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुँचते हैं, उन्हें भाषा को बौद्धिक और अकादमिक उपयोग के लिए और अधिक विकसित करने की ज़रूरत होती है, उन्हें ज्ञानात्मक अकादमिक शैक्षिक भाषिक निपुणता (CALP) की आवश्यकता होती हैं। **बच्चों में बुनियादी अंतः वैयक्तिक संप्रेषण कौशल (BICS) बिना अधिक प्रयास के सहज भाव से विकसित होते हैं जबकि ज्ञानात्मक और शैक्षिक (CALP) प्रयोग के लिए भाषा का विकास कुछ धीमी गति से होता है और उसके लिए औपचारिक विद्यालयी शिक्षा की ज़रूरत होती है।** इसलिए शुरूआती दौर के सामाजिक संप्रेषण (या BICS) और विद्यालयी अनुभवों

CALP : *Cognitive Academic Language Proficiency*
BICS : *Basic Interpersonal Communication Skills*

को आधार बनाकर मातृभाषायी कौशलों को ज्ञानात्मक अकादमिक भाषिक निपुणता (CALP) के स्तरों तक विकसित करने की ज़रूरत है। बच्चे विद्यालय में भाषायी कौशलों के उच्च स्तरों को अपनी मातृभाषा के पूर्वाज्ञान के आधार पर ही प्राप्त करते हैं। ज्ञान और भाषा के विकास का क्रम हमेशा सरल से जटिल स्तरों की ओर ही बढ़ता है। मातृभाषा से इतर भाषा में प्रदान की जाने वाली शिक्षा इस तरह की प्रगति में बाधक बनती है। परिणामस्वरूप बच्चों में जटिल एवं बौद्धिक स्तर की चिंतन करने वाली बहुभाषिक क्षमताओं का विकास नहीं हो पाता है।

आदिवासी बच्चे जो आमतौर पर कम जानी–पहचानी भाषाओं, जैसे– उड़िया या अंग्रेजी में पढ़ाई करने के लिए मजबूर हैं, वे कम से कम दो–तीन सालों तक तो विद्यालयों में पढ़ाए जाने वाले विषयों को समझ ही नहीं पाते हैं। वे अध्यापकों द्वारा पढ़ाए जा रहे तथ्यों को तोते की भाँति दोहरा भर ज़रूर देते हैं पर कक्षा की भाषा के जरिए सोचने की क्षमता व समझ पैदा करने की दृष्टि से सफल नहीं हो पाते हैं। **परिणामस्वरूप, बहुत से आदिवासी बच्चे पढ़ना और लिखना सीखे बगैर विद्यालयी विषयों और अपनी मातृभाषा में ज्ञान जोड़े बिना प्राथमिक शिक्षा के शुरूआती स्तरों में ही विद्यालय छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते है।**

बच्चों की पढ़ाई–लिखाई जब उनकी मातृभाषा में होती है, वे अपेक्षाकृत बेहतर तरीके से सीख पाते हैं, विषयों के प्रति उनकी समझ गहरी बनती है और अपनी भाषा के जरिए चिंतन एवं तर्क करने में भी निपुणता प्राप्त करते हैं। शुरूआती दौर में कम से कम 6 से 8 वर्षों तक मातृभाषा में दी जाने वाली शिक्षा बच्चों को आगे की कक्षाओं में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए तैयार करती है, दूसरी भाषाओं, जैसे– अंग्रेजी और हिंदी को सीखने में मदद करती है और गंभीर बौद्धिक चिंतन व ज्ञान के लिए तैयार करती है।

अभिभावक चाहते है कि उनके बच्चे मुख्य भाषाएँ, जैसे– उड़िया, इंग्लिश और हिंदी सीखें। ऐसे में अगर इतने वर्षों तक मातृभाषा में ही पढ़ाई–लिखाई करवाई जाएगी तो बच्चे इन भाषाओं को कैसे सीख पाएँगे?

सभी बहुभाषी शिक्षा कार्यक्रमों में पहली या दूसरी कक्षा से ही राज्य की मुख्य भाषा जैसे उड़िया (या तेलुगू) को दूसरी भाषा के रूप में लागू किया गया है और अध्यापक बच्चों की मातृभाषा तथा दूसरी भाषा दोनों ही जानते हैं। ज्ञानात्मक और अकादमिक भाषिक निपुणता (CALP) मातृभाषा के जरिए ही हासिल होती है, दूसरी भाषा (उड़िया) और तीसरी भाषा (अंग्रेजी) को सीखने में बहुत सी बातें सामान्य हैं। बच्चे का पढ़ना लिखना सीखने में 'बोली गई भाषा और उसके लिखित रूप' के आपसी संबंध की समझ जुड़ी हुई है। **अपनी मातृभाषा में पढ़ना और लिखना सीखना अपेक्षाकृत आसान है। जब बच्चे मातृभाषा में पढ़ और लिख रहे होते हैं, वे बोली गई और लिखी हुई**

भाषा के आपसी संबंध की समझ भी बना रहे होते हैं, और यह समझ दूसरी भाषाओं में पढ़ना–लिखना सीखने को आसान बना देती है, भले ही उन भाषाओं की लिपि और अक्षर व्यवस्था एकदम भिन्न हो। ठीक इसी तरह मातृभाषा के ज़रिए हासिल की गई अवधारणाओं और सूचनाओं को दूसरी भाषा में दुबारा सीखने या समझने की ज़रूरत नहीं पड़ती, उन अवधारणाओं के लिए सर्फ कुछ नए शब्द या नई शब्दावली ही सीखने की ज़रूरत होती है। उदाहरण के लिए, एक बार बच्चे अपनी मातृभाषा में जोड़ करने और गुणा करने और इन दोनों के आपसी संबंध की अच्छी समझ बना लेते है, तो उन्हें इन चीज़ों को दोबारा से दूसरी भाषा में सीखने की ज़रूरत नहीं होती। इसी तरह, मानव शरीर में पाचन–तंत्र की समझ अपनी भाषा के द्वारा एक बार बन जाने पर दुबारा से इसे नई भाषा के जरिए सीखने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मातृभाषा में इस तरह की बहुत सी बातें सीख ली जाती हैं जिन्हें दुबारा द्वितीय या फिर और बाद में सीखी जाने वाली भाषाओं के ज़रिए सीखने की ज़रूरत नहीं होती। भाषाएँ एक दूसरे से भिन्न ज़रूर हैं पर निपुणता के संदर्भ में उनमें बहुत सी बातें सामान्य सी हैं, इसलिए बहुभाषी व्यक्ति के रूप में विकसित होने की ज़रूरत है। **विद्यालय में प्रवेश लेने के समय बच्चे जिस भाषा को सबसे अच्छी तरह जानते ओर समझते हैं एक बार उसमें उच्च स्तरीय निपुणता विकसित हो जाए तो दूसरी भाषाओं में निपुणता हासिल करना आसान हो जाता है, और भाषाएँ किस तरह से कार्य करती हैं, इसकी भी बेहतर समझ बनती हैं।** अपनी मातृभाषा की बेहतर समझ रखने वाले के लिए नई भाषाएँ सीखना तुलनात्मक रूप से आसान होता है। सिर्फ एक भाषा जानने वाले एक भाषियों की तुलना में दो या अधिक भाषाओं में निपुणता रखने वाले बहुभाषी किसी नई भाषा (जैसे– अंग्रेजी) को अच्छी तरह से सीख पाते हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए शोध स्पष्ट रूप से बताते हैं कि बच्चों की पढ़ाई–लिखाई जितने लंबे समय तक उनकी मातृभाषा में करवाई जाएगी, उनका विद्यालयी उपलब्धि स्तर और दूसरी भाषाओं (जैसे– उड़िया, हिंदी और अंग्रेजी) में निपुणता भी बेहतर होगी। **यह पाया गया है कि विद्यालयों में बच्चों का सीखना मातृभाषा में पढ़ाई जाने की अवधि से कहीं अधिक प्रभावित होता है बजाए कि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से।** इस प्रकार देखा जाए तो गरीब वंचित वर्ग के बच्चों के लिए मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा प्रभावशाली है।

अगर बच्चों को 2–3 वर्षों तक मातृभाषा में शिक्षा दी जाए और उसके बाद द्वितीय भाषा, जैसे– उड़िया, में पढ़ाया जाए तो क्या नुकसान होगा?

दो–तीन वर्षों तक मातृभाषा में पढ़ाई दूसरी भाषा, जैसे उड़िया या अंग्रेजी, में पढ़ाई करवाने से बेहतर तो है पर पर्याप्त नहीं। संज्ञानात्मक और शैक्षिक गतिविधियों के लिए भाषा का विकास कम से कम छह वर्षों तक तो मातृभाषा में शिक्षा देने की माँग करता है। (आठ सालों के लिए मातृभाषा में

शिक्षण तो और भी बेहतर है) इथियोपिया, एक गरीब अफ्रीकी देश, में आठ सालों तक मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा को राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार किया गया है। इथियोपिया में राष्ट्रीय स्तर पर की गई तुलनाएँ प्रदर्शित करती हैं कि जिन बच्चों ने विद्यालयी विषय के रूप में अंग्रेजी और मुख्य रूप से बोली जाने वाली भाषा सीखने के साथ–साथ आठ वर्षों के लिए मातृभाषा में पढ़ाई की, उन्होंने विज्ञान, गणित और दूसरे विद्यालयी विषयों, यहाँ तक की अंग्रेजी में भी, बेहतर प्रदर्शन किया। छह वर्षों के लिए मातृभाषा में पढ़ाई करने वाले बच्चों का प्रदर्शन उतना अच्छा नहीं है। जिन बच्चों की पढ़ाई का माध्यम चौथी कक्षा से ही अंग्रेजी में था, उनका प्रदर्शन तो अंग्रेजी को शामिल करते हुए सभी विषयों में बेहद असंतोषजनक रहा। **इससे यह बात तो स्पष्ट तौर से सिद्ध होती है कि छह से आठ वर्षों की मातृभाषा में पढ़ाई सभी विद्यालयी विषयों और अंग्रेजी, हिंदी तथा उड़िया में उच्च स्तरीय निपुणता हासिल करने के लिए अनिवार्य है।**

छह से आठ वर्षों तक दी जाने वाली मातृभाषा आधारित बहुभाषी शिक्षा मातृभाषा, द्वितीय भाषा (जैसे उड़िया) और विदेशी भाषाओं (जैसे अंग्रेजी) में उच्च स्तरीय बहुभाषिक दक्षता और निपुणता का विकास करती है। इस तरह की शिक्षा बच्चों की अपनी भाषा और संस्कृति का निर्माण करती है, साथ ही उत्कृष्ट कोटि की गुणवत्तापरक शिक्षा के अच्छे शोध आधारित मॉडल (प्रतिमान) भी प्रस्तुत करती है।

– अजीत मोंहती, मिनाती पाण्डा
राष्ट्रीय बहुभाषा शिक्षा स्रोत,
Consortium (2009)

इकाई-3

भाषा : विविधता, सत्ता और कानूनी प्रावधान

Article 350 A

Facilities for instructions in mother tongue at primary stage of education for children belonging to linguistic minority groups.

Source: Kumar.N (2017). https://www.slideshare.net/nilendrakumar7/right-to-education-and-empowerment

पाठ-7

भाषा और बोली

हर सामान्य व्यक्ति अपनी भाषा खूब अच्छी तरह से बोलता व समझता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हर व्यक्ति यह समझे कि वह भाषा के बारे में काफी कुछ जानता है। असल में सच तो यही है कि हर व्यक्ति अपनी भाषा के बारे में बहुत कुछ जानता है। लेकिन इस भाषागत ज्ञान के बारे में आम आदमी अक्सर सचेत नहीं होता। वास्तव में उस ज्ञान के बारे में उसके लिए कुछ भी विशेष कहना संभव नहीं हो पाता। यदि यह कहा जाए कि आपकी अपनी भाषा का पूर्ण व्याकरण आपके पास है– आपके दिमाग में तो शायद कुछ अटपटा–सा लगे। लेकिन यह बिल्कुल सच है। दूसरी तरफ भाषा के बारे में जो बातें लोग अक्सर कहते हैं वे एकदम निराधार अवधारणाओं से जुड़ी रहती हैं। इन निराधार अवधारणाओं के कारण काफी सामाजिक, मानसिक व शैक्षिक नुकसान होता है। यदि हम सब भाषा की प्रवृत्ति को समझने का प्रयास करें तो शायद इस नुकसान से बचने का कोई साधन निकले।

कौन भाषा कौन बोली?

एक मुख्य मसला है भाषा व बोली का। किसी भी सामान्य व्यक्ति से पूछकर देखिए, वह अत्यधिक विश्वास से आपको भाषा व बोली में अंतर बताने लगेगा। कहेगा, ''भाषा का व्याकरण होता है, बोली का नहीं। भाषा की लिपि होती है, बोली की नहीं। भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है जबकि बोली का स्थानीय। भाषा मानकीकृत व परिमार्जित होती है, बोली नहीं। जिसका प्रयोग साहित्य, पत्राचार, दफ्तरों, अदालतों आदि में हो, वह भाषा और जो बोलचाल के लिए इस्तेमाल हो वह बोली। भाषा में शुद्ध–अशुद्ध का प्रश्न उठता है, बोली में सब चलता है आदि, आदि।''

वास्तव में इस तरह के सभी तर्क गलत हैं, समाज के लिए अत्यधिक हानिकारक हैं। भाषाई दृष्टि से भाषा व बोली में कोई अंतर नहीं। दोनों का व्याकरण होता है। दोनों नियमबद्ध हैं। किसको भाषा कहा जाएगा और किसको बोली, यह एक सामाजिक प्रश्न है, राजनैतिक प्रश्न है।

सत्ताधारी व पैसे वाले लोग अक्सर जो बोली बोलते हैं, वह भाषा कहलाने लगती है। उसी के व्याकरण व शब्दकोष लिखे जाते हैं। उसी में साहित्य लिखा जाता है। स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बनकर वही बोली मानकीकृत भाषा बन बैठती है। उसी से मिलते–जुलते, बातचीत करने के अन्य तरीके उस 'भाषा की बोलियाँ' कहलाने लगते हैं। भाषा व समाज के इस रिश्ते को समझना आवश्यक है।

शायद यह ठीक ही कहा गया है कि भाषा केवल एक सशस्त्र बोली है। मुख्य प्रश्न वास्तव में दृष्टिकोण का है। एक गरीब बच्चे की भाषा को एक मानकीकृत भाषा के मापदंड से निरन्तर नापना कहाँ तक जायज़ है?

एक ही मापदंड क्यों?

व्याकरण के प्रश्न को लीजिए। हिन्दी का अपना व्याकरण है। लेकिन ब्रज, अवधी व मैथिली का भी अपना व्याकरण है, जो हिन्दी से कदाचित अलग है। हिन्दी–व्याकरण को मापदंड मानकर ब्रज के व्याकरण को क्यों देखा जाए? सदियों से लोग संस्कृत, ग्रीक, लेटिन आदि को आधार मानकर संसार की सभी भाषाओं में शब्दों के आठ कारकगत रूप तलाश करते रहे हैं। हिन्दी के हर व्याकरण में आपको संस्कृत की ही तरह आठ कारक रूप दिखाने का प्रयत्न रहेगा। लेकिन वास्तव में हिन्दी में तीन ही कारकों के अनुसार शब्द परिवर्तन होता है, यथा :

'लड़का' आदि

	एकवचन	**बहुवचन**
कर्ता	लड़का	लड़के
कर्म / अन्य	लड़क	लड़कों
संबोधन	हे लड़के!	हे लड़कों!
'किताब' आदि		
कर्ता	किताब	किताबें
कर्म / अन्य	किताब	किताबों
संबोधन	हे किताब!	हे किताबों!

हिन्दी की कारक व वचन संरचना समझने के लिए इससे अधिक आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार हिन्दी व्याकरण से अन्य भाषाओं को नापना उचित नहीं है। हिन्दी का–

'नन्द का नन्दन कदम्ब के पेड़ के नीचे धीरे–धीरे मुरली बजाता है।'

ब्रज भाषा में–

'नन्द को नन्दन कदम के तरू तर धीरे धीरे मुरली बजावै। हो जाएगा!

और मैथिली– कोकिल विद्यापति ने इसे यूँ कहा,

'नन्दक नन्दन कदमक तरूतर धीरे धीरे मुरली बजाव।'

मैथिली का नियम है कि 'नन्द' व 'नन्दन' में जो संबंध है वह 'क' के प्रयोग से दिखाया जाएगा। ब्रज में वही 'को' के व हिन्दी में वह 'का' के प्रयोग से। दिखाया जाएगा। तो :

हिन्दी	:	नन्द का नन्दन
ब्रज	:	नन्द को नन्दन
मैथिली	:	नन्दक नन्दन

यह कहना कि ब्रज या मैथिली भाषी को सदैव 'नन्द का नन्दन' ही कहना चाहिए उचित न होगा। ऊपर के उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि कब हिन्दी–ब्रज–मैथिली एक दूसरे से घुल मिल जाएँगी और कब अपना–अपना स्वतंत्र रूप दिखाएँगी, यह कहना भी कोई आसान काम नहीं।

आप मैथिली, सिंधी, कोंकणी, नेपाली या मणिपुरी को कब 'भाषा' का दर्जा देना चाहते हैं, यह एक राजनैतिक प्रश्न है, भाषाई नहीं।

सत्ता से जुड़ा सवाल

व्याकरण को लेकर शुद्ध–अशुद्ध का प्रश्न भी बार–बार सामने आता है। विशेषकर अध्यापक स्वयं को शुद्ध व मानकीकृत भाषा का रखवाला मान लेते हैं। मैंने पहले भी कहा कि प्रश्न समझने व दृष्टिकोण का है। पहली बात– बच्चा जिस भाषा को लेकर स्कूल आता है वह पूर्ण रूप से व्याकरण युक्त है। दूसरी बात– उसकी भाषा उसकी शिक्षा का माध्यम नहीं बन पाई यह एक राजनैतिक, सत्तागत प्रश्न है। तीसरी बात– मानकीकृत भाषा के सीखने के प्रयास में जो अशुद्धियाँ बच्चा करता है, वे निराधार या बेतरतीब नहीं होती, उनकी अपनी संरचना होती है। चौथी बात– किसी अध्यापक के शुद्ध करने से बच्चे अपनी गलती एकदम सुधार नहीं लेते। गलतियां समय आने पर ही सुधरती हैं। पांचवी बात– कोई भी बच्चा, कोई भी भाषा (पहली, दूसरी या दसवीं) बिना 'गलतियाँ' किए नहीं सीखता।

साहित्य के प्रश्न को ही लीजिए। अक्सर कहा जाता है कि जिसमें शिष्ट साहित्य लिखा जाए वह भाषा, शेष उस भाषा की बोलियाँ। आम आदमी आज यही समझता है कि खड़ी बोली हिन्दी ही मानकीकृत भाषा है, साहित्य उसी में लिखा जाता है; अखबारों, दफ्तरों आदि में यही प्रयोग होती है। ब्रज, अवधी, मैथिली आदि हिन्दी की बोलियाँ हैं।

ये विडम्बना है कि– अवधी, जिसमें तुलसीकृत रामचरितमानस लिखा गया, ब्रज, जिसमें सूरदास ही नहीं अपितु अनेक हिन्दू व मुसलमान लेखकों ने महान साहित्य की रचना की व मैथिली, जिसमें विद्यापति ने लिखा– सब आज हिन्दी की माताएँ न होकर उसकी बोलियाँ हो गईं। जब राजनीति व सत्ता का केन्द्र कन्नौज था, तो साहित्य की शिष्ट भाषा थी 'अपभ्रंश'। खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि का जो भी रूप रहा हो, उसकी बोलियाँ कहलाईं। इसी तरह जब राजनैतिक केन्द्र ब्रज–क्षेत्र बना तो शिष्ट साहित्य की भाषा 'ब्रज' हो गई और दिल्ली, मेरठ की खड़ी बोली उसकी बोली कहलाई। शासन व सत्ता का केन्द्र दिल्ली, मेरठ हुआ तो ब्रज, अवधी आदि हिन्दी की बोलियाँ कहलाने लगीं। वही बात कि सवाल दरअसल भाषा व राजनीति के संबंध को समझने का है। उसको

समझकर एक ऐसा सजग दृष्टिकोण बनाने का है जो वैज्ञानिक व संरचनात्मक हो। इसलिए साहित्य के आधार पर भाषा व बोली में अंतर संभव नहीं।

कोई भी लिपि, कोई भी भाषा

लिपि के प्रश्न को लीजिए। अक्सर लोग ऐसे बात करते हैं जैसे भाषा व लिपि का कोई जन्मजात संबंध हो। वास्तव में संसार की सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जा सकती हैं। और एक ही भाषा को लिखने के लिए आप संसार की सभी लिपियों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी व अंग्रेज़ी भाषा व देवनागरी व रोमन लिपि को लीजिएः

हिन्दी (देवनागरी) :	मोहन खेल रहा है।
हिन्दी (रोमन) :	Mohan khel rahaa hai.
अंग्रेज़ी (रोमन) :	Mohan is playing
अंग्रेज़ी (देवनागरी) :	मोहन इज़ प्लेइंग।

भारत की अनेक भाषाएँ देवनागरी में लिखी जाती हैं व एक संस्कृत को लिखने के लिए भारत में ही अनेक लिपियों का प्रयोग होता है। ऐसा भी नहीं है कि लिपि होने से ही किसी भाषा में साहित्य की संभावना होती है। ऋग्वेद जैसे साहित्य के लिए सदियों किसी लिपि की आवश्यकता नहीं पड़ी। सारे भारत में फिर भी ऋग्वेद का वाचन एक ही तरह से होता है। गाँव–गाँव में रामचरितमानस नित गाया, सुना जाता है – लिपि की कोई आवश्यकता नहीं। भाषा प्राचीन है लिपि अभी कल का आविष्कार। लिपि होने न होने से भाषा–बोली में अंतर करना संभव नहीं। आप कुछ दोस्त मिलकर अपनी भाषा के लिए बड़ी आसानी से अपनी एक अलग लिपि बना सकते हैं। उसे कितना राजनैतिक समर्थन मिलेगा, वह एक अलग बात है। संथाली भाषा आज कई लिपियों में लिखी जाती है– देवनागरी, रोमन, बंगला, उड़िया व ओल चिक्की। इनमें से कौन–सी लिपि मानकीकृत हो जाएगी यह एक राजनैतिक प्रश्न है। अभी द्वन्द्व जारी है।

विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग की खूब ठहरी। बार–बार कहो कि हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है, प्रयोग व्यापक। जगह–जगह पोस्टर लगाओ। अखबारों में नित इश्तहार दो, रेडियो व टी.वी. पर प्रयोग करो ओर न जाने क्या–क्या। बातों–बातों में हिन्दी को 'संवैधानिक राजभाषा' से 'राष्ट्रभाषा' का दर्जा दे दो। शिक्षा का माध्यम हिन्दी कर दो। और फिर कहो– लो भाई, हिन्दी हुई भाषा व ब्रज, अवधी, मैथिली, बुन्देली, भोजपुरी आदि उसकी बोलियाँ। इन 'बोलियों' को बोलने वालों की अपार संख्या को हिन्दी में जमा कर दो और फिर कहो कि देखो, करोड़ों लोग हिन्दी बोलते हैं, कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक। थोड़ा धीरज रखकर ध्यान से सोचिए– हिन्दी आखिर कहाँ बोली जाती है? मानकीकृत हिन्दी का प्रयोग कहाँ–कहाँ होता है?

क्या आप या आपके दोस्त घर पर या आपस में

हिन्दी बोलते हैं या आप भोजपुरी, अवधी, मैथिली, मघई, बुन्देली, ब्रज, हाड़ौती, बागड़ी आदि–आदि बोलते हैं? मानकीकृत हिन्दी शायद मेरठ, इलाहाबाद व बनारस के कुछ हिस्सों में बोली जाती है। क्या चम्बा व हमीरपुर (हिमाचल), रोहतक व भिवानी (हरियाणा), जैसलमेर व सवाई माधोपुर (राजस्थान), छपरा व बलिया (बिहार), छिंदवाड़ा व रायपुर (मध्यप्रदेश) में मानकीकृत हिन्दी बोली जाती है? जिस भाषा का प्रयोग हम किताबों और अखबारों या लेख आदि लिखने में करते हैं, मेरी समझ से वह भाषा शायद ही कहीं बोली जाती हो।

साफ है कि लिपि, व्याकरण, साहित्य, विस्तृत क्षेत्र व व्यापक प्रयोग आदि के आधार पर भाषा व बोली में अंतर करना संभव नहीं। फिर भी यह अंतर क्यों किया जाता है? और इतनी गहराई से किया जाता है कि हम 'हिन्दी' को भाषा व 'ब्रज' या 'बुन्देली' को बोली कहने में कुछ भी झिझक महसूस नहीं करते। हिन्दी को एक मानकीकृत भाषा का दर्जा देने के लिए व ब्रज, अवधी आदि को उसकी बोलियाँ बनाने के लिए आपके चारों ओर निरन्तर प्रयास हो रहे हैं, उन्हें ज़रा गौर से समझने का प्रयास करें।

– प्रो. रमाकान्त अग्निहोत्री
दिल्ली विश्वविद्यालय
(दिगन्तर, जयपुर के एक पर्चे से साभार)

पाठ-8

भाषाएँ, असमानताएँ और हाशियाकरण : कुछ प्रमुख बिंदु

1. भारत में भाषाओं से जुड़े कुछ आँकड़े

- भाषायी विविधता के मामले में भारत संसार में चौथे नंबर पर है। (Skutnabb&Kangas 2000)
- 2001 के Census Survey of India में 6600 मातृभाषाओं को दर्ज किया गया था स इन मातृभाषाओं को 3592 मातृभाषाओं में वर्गीकृत किया गया, जिनमें से 1635 मातृभाषाएँ सूचीबद्ध की गईं और बची हुई 1957 मातृभाषाएँ, जिनमें प्रत्येक के 10,000 से कम बोलनेवाले थे, उन्हें 'अन्य' की श्रेणी में डाल दिया गया।
- 2001 के Census ने इन मातृभाषाओं को 122 प्रमुख भाषाओं में विभाजित किया। इन भाषाओं में भारत की 22 राजभाषाएँ (Official Languages) भी शामिल हैं।
- भारतीय समाज में विभिन्न सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए बहुत–सी भाषाओं का इस्तेमाल होता दिखाई देता है स जैसे– रेडियो प्रसारण के लिए 104 से अधिक भाषाएँ, प्रिंट मीडिया के लिए 87 भाषाएँ, प्राथमिक शिक्षा के लिए 67 भाषाएँ और वयस्क साक्षरता योजनाओं के लिए 104 भाषाएँ।

2. भारतीय बहुभाषिकता के दोहरे पहलू

- केवल अलग–अलग क्षेत्रों में विभिन्न भाषाओं का इस्तेमाल ही भारतीय बहुभाषिकता की पहचान नहीं है। भारतीय बहुभाषिकता इससे कहीं अधिक व्यापक और जटिल है। देशभर में

अधिकतर लोग दो या दो से अधिक भाषाओं का इस्तेमाल अपने और किसी अन्य समुदाय के लोगों से बातचीत के लिए करते हैं। इतना ही नहीं, जीवन के अलग–अलग क्षेत्रो में भी हममें से अधिकतर लोग दो या दो से अधिक भाषाओं का प्रयोग सहजता से करते हैं। मिसाल के तौर पर, विभिन्न सामाजिक समूहों में, बाजार में, कार्यक्षेत्र में, घर पर या क़ानूनी मसलों में।

- भारत में, हालाँकि, बहुत–सी भाषाएँ साथ–साथ रहती और पनपती हैं, पर उनमें से बहुत–सी भाषाएँ भेदभाव, सामाजिक–राजनीतिक उपेक्षा और नुकसान का भी शिकार होती हैं। जहाँ एक ओर, कुछ भारतीय भाषाओं को भरपूर सम्मान, सत्ता और संसाधन मुहैया होते हैं, बहुत–सी अन्य भाषाओं को हाशियाकरण और उपेक्षा से जूझना पड़ता है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के रुतबे के बीच बहुत गहरी खाई है, जिसके कारण भारतीय बहुभाषिकता को ''असमानों की बहुभाषिकता'' भी कहा जाता है। (Mohanty 2004, 2006)

- कभी आपने ग़ौर किया है कि जब कभी एक अल्पसंख्यक समुदाय की भाषा और एक वर्चस्वकारी भाषा आपसी संपर्क में आते हैं, ऐसे में आमतौर पर अल्पसंख्यक समुदाय के लोग ताकतवर भाषा को सीखते हुए द्विभाषी या बहुभाषी हो जाते हैं। दमित भाषाओं का क्षेत्र लगातार सिकुड़ता चला जाता है और वे केवल घर–परिवार की भाषा बनकर ही रह जाती हैं। सीमित दायरे और गिरती हुई सामाजिक–आर्थिक उपयोगिता के चलते ये भाषाएँ अशक्त होने लगती हैं, जिसके फलस्वरूप इन भाषाओं को हीन दृष्टि से देखा जाने लगता है। आदिवासी भाषाएँ इस प्रक्रिया का बेरहमी से शिकार होती हैं।

- जब कुछ भाषाओं को सत्ता, शिक्षा, कानून, व्यापार, सामाजिक क्रियाकलापों और सरकारी कामकाज के क्षेत्र से बाहर रखा जाता है, तब उन भाषाओं के पनपने की संभावनाओं पर गहरी चोट लगती है। उनका जीवित रहना दिन–प्रतिदिन असंभव होता जाता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार की सामाजिक और राजनीतिक उपेक्षा इन भाषाओं को इस्तेमाल के तौर पर बेहद कमजोर बना देती हैस दुःख की बात तो यह है कि सत्ता के इस खेल के कारण उपजी यही कमजोरी इन भाषाओं को पीछे छोड़ने का कारण भी बता दी जाती है। इस प्रकार, शक्तिशाली समूहों की भाषा लगातार बलवान होती चली जाती है और अल्पसंख्यकों, गरीबों, ग्रामीण क्षेत्रों या उपेक्षित समूहों की भाषाएँ सत्ता के इस भँवर में और धँसती चली जाती हैं। (Mohanty et al- 2009: 278-291) अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि भले ही भारतीय समाज में तमाम भाषाएँ एक साथ रहती हैं, पर इनमें से कुछ ही के पास सत्ता, संसाधन और विशेष लाभ हैं, अन्य भाषाएँ हाशिए पर अपने जीवन और अधिकारों के लिए लड़ रही हैं।

3. दोहरा विभाजन और भाषायी पदानुक्रम

- दक्षिण एशिया और दुनिया के अनेक देशों में अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व के चलते भाषाओं के बीच सत्ता और ताकत का फासला लगातार बढ़ रहा है। इसे भाषायी पदानुक्रम (linguistic hierarchy) भी कहा जाता है, जहाँ सबसे ऊँचे पायदान पर अंग्रेजी मौजूद है, राष्ट्र की कुछ प्रमुख और शक्तिशाली भाषाएँ कहीं बीच में और ITM (indigenous and tribal minority) भाषाएँ सबसे निचले पायदान पर हैं। इस स्थिति को दोहरे विभाजन (the double divide) के नाम से भी समझा जाता है– एक विभाजन अंग्रेज़ी और राष्ट्र की प्रमुख भाषाओं के बीच, और दूसरा राष्ट्र की प्रमुख भाषाओं और ITM भाषाओं के बीच।

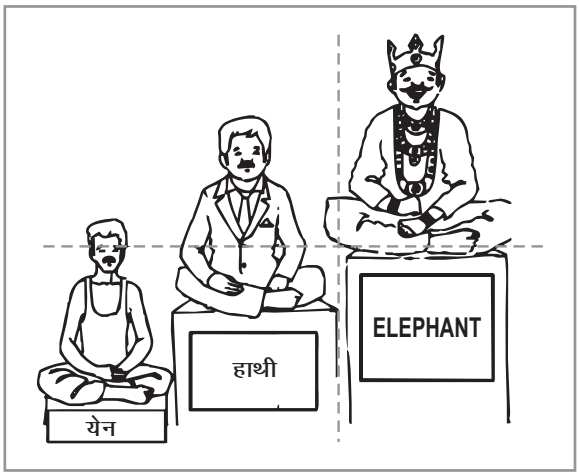

- दोहरे भाषायी विभाजन की इस स्थिति में, ऊँचे स्तर पर मौजूद भाषाएँ निचले स्तर की भाषाओं को महत्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्रों से बाहर खदेड़ देती हैं। इस प्रक्रिया में, अधिकतर भाषाओं का क्षेत्र या दायरा उच्चस्तरीय भाषाओं के पक्ष में सिकुड़ता चला जाता है। अपनी जमीन के खो जाने व हाशिए पर धकेल दिए जाने की यह दर, इस त्रि–स्तरीय पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर मौजूद, ITM भाषाओं के मामले में कहीं ज़्यादा होती है। यह भाषायी दोहरा विभाजन ITM भाषाओं के सामने भाषायी दरिद्रता, पतन, भाषायी विस्थापन और विलुप्त हो जाने के ख़तरे को जन्म देता है।

- भारत में, अंग्रेजी सत्ताधारी भाषा है, जबकि हिंदी और अन्य मुख्य भाषाएँ प्रांतों में ITM भाषाओं पर प्रभुत्व जमाती हैं। इसने कई ITM भाषायी समुदायों में अपनी भाषाओं के पुनर्जीवन व पहचान के लिए संघर्षों को जन्म दिया है। दिसंबर 2003 में एक संवैधानिक संशोधन के जरिए बोडो व संथाली भाषा को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। इसके पीछे भाषायी आंदोलन व राजनैतिक सभाओं का एक लंबा दौर रहा। 1950 में भारतीय संविधान के अमल में आने के बाद यह पहली बार हुआ था, जब किसी आदिवासी भाषा को संवैधानिक पहचान मिली थी।

- देशी या स्थानीय भाषाओं के इस्तेमाल को अक्सर शर्म की बात माना जाता है। आमतौर पर लोग भी इन भाषाओं में अपनी दक्षता को नकारते दिखते हैं। ये कुछ संकेत हैं जिनसे हम समझ सकते हैं कि किस तरह भाषायी पदानुक्रम और दोहरा विभाजन हमारे जटिल समाज और मानसिकता का हिस्सा बनता जा रहा है। (Mohanty 1991, 2004)। भारत में बहुभाषी सामाजीकरण के विभिन्न अध्ययन दिखाते हैं कि भारत के बच्चे बहुत शुरू में ही दोहरे विभाजन को महसूस करने लगते हैं और कुछ भाषाओं को दी जाने वाली प्राथमिकता को समझने लगते हैं (Bujorbarua 2006, Mohanty et al- 1999)। उदाहरण के लिए, मोहंती दिखाते हैं कि भारत में 7 से 9 वर्ष की उम्र में ही बच्चों को अपनी मातृभाषा की तुलना में अंग्रेजी की ऊँची सामाजिक हैसियत का स्पष्ट आभास हो जाता है। स्कूलों का इस तरह की समझ बनाने में विशेष योगदान होता है। (Mohanty 1999)

4. भारत में भाषाएँ और शिक्षा : दोहरे विभाजन के कुछ निहितार्थ

- शिक्षा के सभी स्तरों पर अंग्रेजी का प्रभुत्व लगातार बढ़ता जा रहा है। संवैधानिक प्रावधान व कई नीतिगत दस्तावेज बच्चों की मातृभाषा में शिक्षा के सिद्धांत को स्वीकारते हैं। 1957 में भारतीय स्कूली शिक्षा में मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषाओं, अंग्रेजी और हिंदी की जगह तय करने हेतु भारत सरकार द्वारा एक त्रि–भाषीय सिद्धांत (Three Language Formula /TLF) सुझाया गया था। TLF के माध्यम से मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा के शिक्षण पर ज़ोर दिया गया था, और उसके बाद हिंदी या क्षेत्रीय भाषा और फिर अंग्रेजी के शिक्षण का सुझाव दिया गया था। किंतु इसमें प्रमुख क्षेत्रीय भाषा और बच्चों की मातृभाषा का फर्क स्पष्ट नहीं था, जिसका नतीजा यह हुआ कि मुख्य प्रांतीय भाषाएँ स्कूलों में शिक्षण का माध्यम बन गईं और अल्पसंख्यक व आदिवासी बच्चों पर थोप दी गईं। 1967 में TLF में संशोधन करके आदिवासी बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा के लिए आदिवासी भाषाओं के प्रयोग का सुझाव दिया गया और हिंदी के शिक्षण को वैकल्पिक घोषित किया गया। हालाँकि TLF या अन्य नीतिगत दस्तावेजों के ऐसे सभी प्रावधान ''जमीनी तौर पर नदारद ही रहे'' (Mohanty 2006: 274)। आने वाले समय में TLF विभिन्न संशोधनों के जरिए अंग्रेजी, हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं और आदिवासी या अल्पसंख्यक समूहों की मातृभाषाओं के बीच संतुलन तलाशने में लगा रहा और स्पष्ट तौर पर ऐसा करने में विफल रहा।

- भारतीय स्कूलों को उनकी शिक्षा की वार्षिक लागत (माता–पिता के लिए) और शिक्षण के माध्यम के आधार पर पाँच स्तरों पर बाँटा जा सकता है :

(i) अति उच्चवर्गीय अंग्रेजी माध्यम आवासीय विद्यालय (लगभग 1,000,000 INR)

(ii) सम्पन्न वर्ग के लिए ऊँची लागत वाले अंग्रेजी माध्यम विद्यालय (100,000 to 300,000 INR)

(iii) कम सम्पन्न सामाजिक वर्ग के लिए कम लागत वाले अंग्रेजी माध्यम विद्यालय (5,000 to 20,000 INR)

(iv) गैर–लागत वाले (मुख्य) क्षेत्रीय भाषीय सरकारी विद्यालय, उन बहुसंख्यक भाषी समूहों के लिए जो अंग्रेजी माध्यम का ख़र्च नहीं उठा सकते

(v) गैर–लागत वाले (मुख्य) क्षेत्रीय भाषीय सरकारी विद्यालय, उन ITM भाषी समूहों के लिए जो अंग्रेजी माध्यम का ख़र्च नहीं उठा सकते।

अंतिम दो श्रेणियों के बच्चे 'वंचित' कहे जा सकते हैं, क्योंकि वे निम्न सामाजिक–आर्थिक वर्ग से आते हैं और निम्न गुणवत्ता की शिक्षा हासिल करते हैं। हालाँकि पाँचवी श्रेणी के ITM बच्चे सबसे ज़्यादा वंचित बच्चे हैं, क्योंकि वे एक ऐसी भाषा में निम्न गुणवत्ता की शिक्षा हासिल कर रहे होते हैं, जो उनकी मातृभाषा भी नहीं है।

आदिवासी और अल्पसंख्यक बच्चों की भाषा को स्कूलों से बेदख□ल कर देने का, उनकी शिक्षा और काबिलियत पर बेहद नकारात्मक असर पड़ता है और उनकी गरीबी की अवस्था बनाए रखने में योगदान देता है। (Mohanty 2008b)

– अजीत मोंहती, मिनाती पाण्डा

Source: *Adapted and translated from Mohanty- Languages, inequality and marginalization- Jawaharlal Nehru University*

पाठ-9

मातृभाषा में शिक्षण के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान

1. भारत का संविधान क्या कहता है?

अनुच्छेद 350 क. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएँ–

प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक–वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

2. Right to Education Act (RTE) 2009 क्या कहता है?

बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार, 2009, की धारा 29 (2) (f) में कहा गया है कि "शिक्षण का माध्यम, जहाँ तक संभव हो सके, बच्चों की मातृभाषा में होना चाहिए।" NCF 2005 में भी बच्चों की मातृभाषा में शिक्षा देने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है। हालाँकि पाठ्यचर्चा और मूल्यांकन की रूपरेखा राज्य सरकार द्वारा तय की जानी है और स्कूल में शिक्षण का माध्यम तय करना भी उनका ही कार्य है। कई राज्यों ने बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा देने के लिए कदम उठाये हैं।

3. National Curriculum Framework (NCF) 2005 क्या कहता है?

बच्चों की घरेलू भाषा(एँ), स्कूल में शिक्षण का माध्यम होना चाहिए।

अगर स्कूल में उच्चतर स्तर पर बच्चों की घरेलू भाषाओं में शिक्षण की व्यवस्था न हो, तो प्राथमिक स्तर की स्कूली शिक्षा अवश्य घरेलू भाषा(ओं) के माध्यम से ही दी जाए। यह आवश्यक है कि हम बच्चे की घरेलू भाषाओं को सम्मान दें। हमारे संविधार की धारा 350–क के मुताबिक, ''प्रत्येक राज्य

और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक–वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।

4. National Education Policy (NEP) 2019 क्या कहती है?

- यह सर्वमान्य है कि बच्चे महत्त्वपूर्ण संकल्पनाओं को अपनी घर की भाषा या मातृभाषा में बेहतर और जल्दी सीखते हैं। इसलिए, जहाँ तक संभव हो, कम से कम कक्षा 8 तक शिक्षण का माध्यम बच्चों की घर की भाषा या मातृभाषा या स्थानीय भाषा होगा। इसके बाद, घर की भाषा/मातृभाषा को एक भाषा के रूप में, जहाँ तक संभव हो, सिखाना जारी रखना चाहिए। उच्च दर्जे की पाठ्यपुस्तकें, जिसमें विज्ञान भी शामिल है, घर की भाषा में उपलब्ध करवाई जाएगी। अगर कहीं घर की भाषा में पाठ्यपुस्तक या पढ़ने–लिखने की सामग्री उपलब्ध नहीं है, तो वैसी स्थिति में जहाँ तक संभव हो, बच्चों और शिक्षक के बीच शिक्षण का संवाद बच्चों की घर की भाषा में ही हो। शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जाएगा कि जिन छात्रों की घर की भाषा और स्कूल की भाषा अलग हैं, उनके साथ वे द्विभाषी सामग्री के साथ, कक्षा में शिक्षण के लिए द्विभाषी एप्रोच को अपनाएँ।

- चूंकि शोध स्पष्ट तौर पर यह बताते हैं कि 2 से 8 वर्ष के बीच बच्चे भाषाएँ अत्यंत तेज़ी से सीखते हैं, और यह भी कि बहुभाषिकता छोटे बच्चो के संज्ञानात्मक विकास के लिए बेहद फायदेमंद है, इसलिए यह आवश्यक है कि बच्चों को बुनियादी स्तर से ही अलग–अलग भाषाएँ (मातृभाषा पर विशेष जोर देते हुए) सीखने का माहौल मिले। सभी भाषाओँ को रोचक और अंतःक्रियात्मक तरीके से सिखाया जाएगा, जिसमें समृद्ध चर्चा, पढ़ने, लिखने, बोलने और कला, जैसे– संगीत, साहित्य और थिएटर के भरपूर मौके हों। केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा देश की सभी प्रांतीय भाषाओं, खासकर सभी अनुसूचित भाषाओं, के लिए बड़ी संख्या में भाषा शिक्षकों पर निवेश किया जाएगा।

- बहुभाषिकतावाद और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए तथा संवैधानिक प्रावधानों और लोगों की आकंक्षाओं को ध्यान में रखते हुए त्रिभाषी फार्मूला जारी रखा जाएगा। पर इस नीति को लागू करने में काफी लचीलापन रखा जायेगा। कोई भाषा किसी भी राज्य पर थोपी नहीं जाएगी।

- जिन छात्रों के लिए शिक्षण का माध्यम स्थानीय भाषा/घर की भाषा है, वे कक्षा 6 से दो भाषाओं में विज्ञान सीखना प्रारंभ करेंगे ताकि कक्षा 9 के अंत तक वे विज्ञान पर दोनों भाषाओं– अपनी घर की भाषा और अंग्रेजी में बात कर सकें। अन्तराष्ट्रीय विषय जैसे व्यापार अध्ययन, एकाउंटिंग, मनोविज्ञान, इत्यादि को भी दो भाषाओं में सिखाया जाएगा।

5. NCERT प्री–स्कूल में मातृभाषा के उपयोग के बारे में क्या कहता है?

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद प्री–स्कूल के बच्चों को उनकी मातृभाषा या घर की भाषा में पढाये जाने पर जोर देता है। परिषद प्री–स्कूल शिक्षा को 3–6 वर्ष के बच्चों को विद्यालय आने से पूर्व दी जाने वाली शिक्षा के रूप में परिभाषित करता है। NCERT के अनुसार प्री–स्कूल में मातृभाषा या घर की भाषा को शिक्षण का माध्यम बनाया जाना चाहिए। ''भाषा बच्चों की पहचान और भावनात्मक सुरक्षा से करीबी रूप से जुड़ा हुआ है, जो उन्हें अपनी सोच और भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने में मदद करता है।'' शोधों का हवाला देकर बताया गया है कि जो बच्चे प्री–स्कूल में मातृभाषा में सीखते हैं, उन्हें आगे चलकर समझने और अभिव्यक्त करने में कम कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

इकाई-4

बहुभाषी शिक्षा के आयाम

बहुभाषिकता

बच्चों को समझने के लिए, उनसे रिश्ता कायम करने के लिए, उनकी घर की भाषा और स्कूली भाषा में एक पुल बनाने के लिए बहुभाषिकता की अहम भूमिका है। यदि स्कूल में उनकी घर की भाषा को अस्वीकार किया जा रहा है तो बच्चे ने अब तक जिस भाषा में अपने को गढ़ा है, उसे अस्वीकार किया जा रहा है।

बच्चे ने अब तक जिस भाषा में अपनी अस्मिता को गढ़ा है, जिसके द्वारा दुनिया के बारे में एक समझ बनाई है, उसे अस्वीकार करना न केवल मातृभाषा को अस्वीकार करना है, बल्कि उसके समझ के आधार को अस्वीकार करना है।

Source: Azim Premji Foundation (2016). Teachers of India

पाठ–10

बहुभाषी शिक्षा क्या होती है?

1.5. बहुभाषी शिक्षा क्या होती है?

भारत एक बहुभाषी समाज है। हम सभी जीवन के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग भाषाओं का प्रयोग करते हैं। हम सभी दो या अधिक भाषाएँ बोलते और समझते हैं। मगर, सामाजिक, अधिकृत एवं शैक्षिक धरातल पर इन भाषाओं की हैसियत में भारी फ़र्क रहता है। पिछले भागों में हमने कक्षा में बच्चे की प्रथम भाषा के प्रयोग के महत्त्व पर बात की थी। हम यह भी जानते हैं कि बच्चों के लिए हिंदी और अंग्रेज़ी बोलने, पढ़ने और लिखने की क्षमता हासिल करना कितना महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि ये दोनो भाषाएँ बड़े क्षेत्र में सम्प्रेशण की महत्त्वपूर्ण भाषाएँ है और आर्थिक उन्नति के मार्ग पर ले जा सकती हैं। इसीलिए, बच्चों को प्राथमिक कक्षाओं में दो–तीन भाषाएँ अच्छी तरह सीखनी चाहिए। शुरुआती साक्षरता और पढ़ाई का माध्यम (जहाँ तक हो सके) वही भाषा होनी चाहिए जिसे बच्चे भली–भांति बोलते और समझते हों। मगर हम यह भी जानते हैं कि कई वजहों से बच्चों की प्रथम भाषा को ि ाक्षण के माध्यम के तौर पर इस्तेमाल करना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में बच्चों को अतिरिक्त अपरिचित भाषाएँ (हिंदी और अंग्रेज़ी सहित) सीखने के लिए मदद दी जानी चाहिए। इसके लिए उनकी प्रथम भाषा या भाषाओं का सुनियोजित ढंग से प्रयोग किया जाए तो और अच्छा होगा।

बहुभाषी शिक्षा (Multilingual Education – MLE/ एमएलई) एक ऐसा शब्द है जिसके तहत बहुत तरह के कार्यक्रम और पद्धतियाँ आती हैं।

बच्चे बिना किसी भ्रम के एक साथ दो या अधिक भाषाएँ सीख सकते हैं।

MLE पद्धति के कुछ आधारभूत आयाम इस प्रकार हैं

1. **बहुभाषी शिक्षा का सरलतम अर्थ है कि शिक्षा की प्रक्रिया में एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग किया जाए; और, बच्चों को दो या अधिक भाषाओं में सम्प्रेशण**

की क्षमता और अकादमिक निपुणता प्राप्त करने के लिए सहायता दी जाए। MLE पद्धति में एक से अधिक भाषाओं को शिक्षण के माध्यम के तौर पर क्रमबद्ध ढंग से (एक भाशा के बाद दूसरी भाशा का) या समानांतर रूप से (एक साथ एक से अधिक भाशाओं का) इस्तेमाल किया जाता है। MLE के एक मॉडल को L1 आधारित या 'मातृभाषा आधारित MLE' कहा जाता है। इस मॉडल में बच्चों की प्रथम भाषा (ऐसी स्थितियाँ जहाँ सभी अथवा अधिकांश बच्चों की प्रथम भाषा एक ही होती है) को प्रारंभिक साक्षरता और पढ़ाई–लिखाई के माध्यम के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। इसके बाद L2 और L3 भाषाओं को एक के बाद एक क्रमबद्ध ढंग से उन्हें सिखाया जाता है। शिक्षण के माध्यम के तौर पर L1 का ही इस्तेमाल जारी रहता है। L2 और L3 को सीखने के लिए L1 को एक आधारिशला के रूप में सुनियोजित ढंग से प्रयोग किया जाता है।

(क) **संवर्धनकारी (Additive / ऐडिटिव या जोड़ने वाला) MLE मॉडल** में नई भाषाओं को पाठ्यचर्या में इस तरह शामिल किया जाता है कि बच्चों की प्रथम भाषा की पढ़ाई भी साथ में चलती रहे। इससे बच्चों की भाषाओं को कमतर नहीं माना जाता।

(ख) **दूसरी तरफ MLE का एक ऋणात्मक (Subtractive/ 'सबट्रेक्टिव' या घटाने वाला) मॉडल** वह है जो नई अथवा अतिरिक्त भाषाओं (हिंदी/अंग्रेज़ी) की पढ़ाई शुरू करने के बाद बच्चों की प्रथम भाषाओं को उनके शिक्षण से हटाता चला जाता है। यह उपयुक्त मॉडल नहीं है।

2. **कक्षा प्रक्रियाओं में बच्चों की भाषाओं को जगह दी जाती है और उनको अतिरिक्त भाषाएँ सीखने के लिए संसाधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।** इस प्रकार, MLE कक्षा एकभाषिक कक्षा नहीं होती। वहाँ भाषा कक्षा में केवल एक भाषा का ही प्रयोग नहीं किया जाता है। उदाहरण के लिए, हिन्दी पढ़ाने के लिए अध्यापक (क) पढ़कर सुनाए गए पाठ पर आधारित प्रश्नों के उत्तर देने के लिए बच्चों को छत्तीसगढ़ी या वागड़ी का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं, (ख) बच्चों को छत्तीसगढ़ी या वागड़ी में छोटी–छोटी कहानियाँ पढ़कर सुना सकते हैं, (ग) कठिन शब्दों अथवा अवधारणाओं को समझाने के लिए बच्चों की भाषा का प्रयोग कर सकते हैं, और (घ) बच्चे समूह/जोड़ो में चर्चा के दौरान अपनी भाषाओं का प्रयोग कर सकते हैं। भाषाओं को एक–दूसरे से बिलकुल अलग–थलग नहीं रखा जाता है। **MLE कक्षा में भाषाओं का मिश्रण होता रहता है** और बच्चों को सहारे के तौर पर अपनी प्रथम भाषा को आधारशिला के रूप में प्रयोग करते हुए नयी भाषाएँ सीखने का मौका मिलता है।

3. दो या अधिक बच्चों की प्रथम भाषाओं वाली बहुभाषी कक्षाओं में बच्चे दूसरे बच्चों द्वारा बोली जा रही विभिन्न भाषाओं की आंशिक समझ हासिल कर लेते हैं। बहुभाषी शिक्षा एक ऐसे दर्शन या पद्धति का नाम है जिसमें कक्षा के सभी बच्चों की भाषाओं व संस्कृतियों के लिए परस्पर सम्मान और सहिष्णुता का भाव रहता है। **इस तरह, एक खास भाषा के प्रभुत्व पर प्रश्नचिह्न लग जाता है और सभी भाषाओं को समान महत्त्व मिलने लगता है।** अलग–अलग भाषाओं में नियमित, सार्थक और समृद्ध आदान–प्रदान से अध्यापक को भी बच्चों की उन भाषाओं की कुछ समझ हो जाती है, जिन्हें वो पहले से नहीं जानता।

4. **सीखने और सिखाने की बहुभाषी पद्धति किसी भी विषय के लिए प्रयोग की जा सकती है।** कायदे से किसी पाठ या अवधारणा पर सबसे पहले उसी भाषा में चर्चा की जानी चाहिए जिसे बच्चे जानते हैं और जिसमें वे उस पाठ/अवधारणा के बारे में सोच सकते हैं।

5. बहुभाषी पद्धति बच्चों की संस्कृतियों और स्थानीय ज्ञान को कक्षा में लाने में मदद देती है। **एक बढ़िया MLE कार्यक्रम केवल बच्चों की भाषा के प्रयोग तक सीमित न रहते हुए स्थानीय संस्कृति से संबंधित विषयों, घटनाओं और बच्चों के अनुभवों के बारे में सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने का अवसर भी प्रदान करता है।** इसके लिए तरह–तरह के मौखिक कार्य कराए जा सकते हैं। कहानी कहने–सुनने, बातचीत, साझा पठन की गतिविधियों के दौरान तथा लेखन गतिविधियों में स्थानीय विषयों का इस्तेमाल किया जा सकता है। अध्यापक को ऐसे तरीके ढूँढने चाहिए जिनके ज़रिये वे स्थानीय समुदाय और शिक्षित युवाओं की मदद से स्थानीय पाठ्यसामग्री इकट्ठा कर सकें या विकसित कर सकें। शुरुआती सालों में स्थानीय संस्कृति तथा बच्चों के अनुभवों पर आधारित ज्ञान के प्रयोग से बच्चों पर कई तरह के सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं जिनमें ि ाक्षण–अधिगम प्रक्रिया के साथ बच्चों का भावनात्मक लगाव भी शामिल है। यह भावनात्मक लगाव सीखने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होता है।

6. हो सकता है कि अध्यापक बच्चों की सारी भाषाओं को न समझते हों, खासतौर से जब कक्षा में कई प्रथम भाषाएँ हों, मगर उन्हें इन सभी भाषाओं के प्रति एक ग्रहणशील और सकारात्मक रवैया अपनाना चाहिए। **दूसरी भाषाओं के प्रति सम्मान का प्रदर्शन करने और उनको महत्त्व देने से अध्यापक भी कक्षा में एक अधिगमकर्ता बन जाते हैं और बच्चों के साथ–साथ सीखने लगते हैं।**

पाठ–11

बहुभाषी शिक्षण के आधारभूत तत्व

1. बच्चों की भाषाओं को कक्षा में समुचित स्थान दिया जाता है। **बच्चों की भाषाओं को अलग–अलग विषयवस्तु और नयी भाषाएँ को सिखाने के लिए संसाधन के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है।** आदर्श स्थिति में, बच्चों की प्रथम भाषाओं को सीखने–सिखाने की भाषा (Medium of Instruction) के रूप में आंगनवाडी और कक्षा एक से पांच तक इस्तेमाल किये जाने पर जोर दिया जाता है।

2. **अध्यापक बच्चों को न केवल उनकी भाषाओं में बात करने के लिए प्रोत्साहन देते हैं, बल्कि स्वयं भी उनकी भाषाओं का हरसंभव प्रयोग कक्षा में करते हैं।** जैसे– बच्चों की प्रथम भाषाओं में कहानियाँ सुनाना, कठिन शब्दों या अवधारणाओं को बच्चों की भाषा में समझाना, सामूहिक चर्चाओं में बच्चों की भाषाओं का इस्तेमाल करना, आदि।

3. बहुभाषी कक्षाओं में सहिष्णुता और कक्षा में उपलब्ध सभी भाषाओं और संस्कृतियों के लिए पारस्परिक सम्मान का भाव देखने को मिलता है। **कक्षाओं में केवल किसी एक भाषा का प्रभ्तुव नहीं दिखाई देता।**

4. भाषाएँ एक–दूसरे से अलग–थलग करके नहीं सीखी जाती। बल्कि **बच्चों की परिचित भाषा की मदद लेकर नयी भाषा सिखाने पर जोर दिया जाता है।** नयी भाषा सीखने के लिए 'परिचित और नयी भाषा का मिला–जुला प्रयोग' एक मजबूत रणनीति के रूप में काम आता है।

5. बच्चों की भाषाओं का प्रयोग केवल भाषा की कक्षा तक ही सीमित नहीं होता। **बहुभाषी शिक्षण का तरीका पूरी पाठ्यचर्या के लिए हर उस समय उपयुक्त माना जाता है जब कोई नयी अवधारणा या विषयवस्तु सिखाई जाए या उच्च–स्तरीय चिंतन का काम हो।**

6. बहुभाषी शिक्षण का तरीका औपचारिक पाठ्यक्रम के साथ–साथ **बच्चों की संस्कृति और उनके अनुभवों को कक्षा में अर्थपूर्ण रूप से शामिल करने का मौका देता है।**

Source: *Adapted and translated from Jhingran, D., Early Literacy and Multilingual Education in South Asia, United Nations, Children's Fund Regional Office for South Asia, Kathmandu, 2019.*

पाठ–12

एक बहुभाषी कक्षा में

मुझे एक सरकारी विद्यालय की कक्षा तीन को पढ़ाने का कार्य मिला था। इस कक्षा के अधिकांश छात्र निम्न मध्यम वर्गीय पृष्ठभूमि से थे और पहली पीढ़ी के विद्यार्थी थे। इन बच्चों की मातृभाष छत्तीसगढ़ी थी लेकिन इनमें से कुछ हिंदी बोल और समझ सकते थे (हिंदी के कुछ साधारण शब्द जो कि सामान्य बोलचाल में ज्यादा प्रयोग किये जाते हैं, और कुछ कामचलाऊ वाक्य न कि पाठ्यपुस्तक की हिंदी)। मुझे स्वयं छत्तीसढ़ी का एक शब्द भी नहीं आता था। इस लेख में इन बच्चों के साथ हिंदी सीखने–सिखाने को लेकर मेरे द्वारा किये गए कुछ शुरुआती प्रयासों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

कक्षा के साथ दो–तीन दिन कार्य करने के बाद मुझे महसूस हुआ कि हम पाठ्यपुस्तक के साथ आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। मैंने निश्चय किया कि बच्चों के साथ कहानी सुनने–सुनाने को लेकर कुछ काम किया जाए। मैंने बच्चों से पूछा कि क्या वे कहानी सुनना पसन्द करेंगे। सभी ने बड़े उत्साह व रुचि के साथ सहमति जताई। मैंने कहानी सुनाने के लिए पहले स्वयं तैयारी की (और तैयारी करते हुए मुझे अहसास हुआ कि कहानी सुनाने की योग्यता को कौशल क्यों कहा जाता है) और अगले दिन कक्षा में कहानी सुनाने का कार्य शुरू हुआ। लेकिन कुछ ही मिनटों में (कहानी का चौथा हिस्सा भी पूरा नहीं हुआ था) मुझे अहसास हुआ कि बच्चों का ध्यान कहानी पर है ही नहीं। कहानी सुनने की बात को सुनकर उनमें जो रुचि व उत्साह मुझे नज़र आया था, वह कहीं खो गया था। लगभग 80% बच्चे अन्य कार्यों में व्यस्त थे (कोई पुस्तक से नकल करने में तो कोई बोतल व पेन से खेलने में व कोई किसी से बातचीत में)। मैंने बच्चों से पूछा क्या कोई समस्या है? वे क्यों कहानी पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। कोई जवाब नहीं आया। बच्चों को अभी तक की कहानी में कुछ समझ आया है या नहीं यह जानने के लिए मैंने उनसे कुछ प्रश्न किये–कहानी में कौन–कौन है? पेड़ कहाँ है ? लेकिन इन प्रश्नों का भी कोई जवाब नहीं आया। कुछ और प्रश्न पूछने के बाद मुझे यह लगा कि अधिकांश बच्चों को कहानी समझ ही नहीं आ रही थी। उनकी रुचि व उत्साह खत्म होने का कारण था कि कहानी के मुख्य शब्द ही उन्हें समझ नहीं आ रहे थे। इसी वहज से न तो कहानी में वे कोई जुड़ाव

देख पा रहे थे और न ही कोई अर्थ बना पा रहे थे। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उनकी रुचि खत्म हो गयी थी।

कुछ बच्चें, जो मुझे लगा कि कहानी को समझ पा रहे हैं, उनसे मैंने कहा कि वे अपनी भाषा में कहानी का अनुवाद करके कक्षा के अन्य बच्चों को सुनायें। वे आश्चर्यचकित हो गए। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि शिक्षिका उनको कहानी का अनुवाद करने को ही रही है ओर वो भी उनकी अपनी भाषा में! कुछ बच्चे सोच रहे थे कि कुछ गड़बड़ है, कुछ आगे आने से शर्मा रहे थे, कुछ मुझे देखकर मुस्कुरा रहे थे और कुछ शायद यह सोच रहे थे कि मैं उन्हें यह क्या बेतुका कार्य करने को कह रही हूँ।

तब मैने कक्षा पाँच के एक लड़के से गुज़ारिश की कि क्या वह उस कहानी का अनुवाद कर सकता है? उसने भी मुझसे यही सवाल किया कि क्या मैं वास्तव में ऐसा ही चाहती हूँ? उसने मुझसे यही सवाल तीन बार पूछा और फिर एक शर्मिली मुस्कुराहट के साथ कहानी का अनुवाद शुरू किया।

कक्षा में एकदम चुप्पी छा गयी। सभी बच्चे ध्यान से सुन रहे थे। कहानी खत्म होने के बाद मैंने बच्चों से कुछ प्रश्न भी किये। (शायद ज़रूरत नहीं थी लेकिन मैं तुरन्त यह जानना चाहती थी कि क्या उन्हें कुछ समझ आया) और उन्होंने उनके उत्तर भी दिए। मैं संतुष्ट थी। कक्षा उस दिन समाप्त नहीं हुई वरन उसी दिन कक्षा की शुरुआत हुई; धीरे–धीरे बहुत से बच्चों ने अपनी भाषा में मुझसे बात करना शुरू किया। कभी–कभी जब मैं यह नहीं समझ पाती थी कि वे क्या कहने की कोशिश कर रहे हैं तब वे विभिन्न भाव भंगिमाओ, विभिन्न चित्रों अथवा किसी दूसरे बच्चे की मदद लेकर (जो उन्हें लगता कि मुझे समझाने में उनकी मदद कर सकता है) मुझे समझाने का प्रयास करते कि वे क्या कहना चाहते हैं! इसका उल्टा भी हो रहा था– यदि उन्हें मेरी कोई बात समझ नहीं आती तो अब वे बेहिचक मुझे, फिर से समझाने को कहते थे।

उन्होंने अब अपनी लड़ाइयाँ, चुटकुले, गीत ओर घरों, त्यौहारों, खेतों के अनुभवों और उनके कार्यों को भी बाँटना शुरू किया। उन्होंने न केवल बोलना शुरू किया बल्कि कक्षा की विभिन्न गतिविधियों में भाग लेना भी शुरू किया। इस बात ने भी मेरा ध्यान आकर्षित किया कि कुछ बच्चो के व्यवहार में भी परिवर्तन हुआ। वे बच्चे जो पहले मेरी बात सुनते ही नहीं थे उन्होंने भी मेरी मदद करनी शुरू की। वे कक्षा में होने वाली सामूहिक गतिविधियों में भाग लेने लगे, दूसरे बच्चों की मदद करने लगे और जब–तब कक्षा से बाहर जाना भी बंद कर दिया।

यह पूरी अन्तः किया हम सभी के लिए बहुत अर्थपूर्ण बन गयी थी। हम सभी एक–दूसरे से सीख रहे थे– न केवल एक दूसरे की भाषा के शब्द और क्रिया, बहुवचन आदि के नियम, पर यह भी कि हम अलग–अलग कामों को कैसे करते हैं, चीज़ों के बारे में कैसे कहते हैं और चीज़ों से अपना क्या रिश्ता

देखते हैं। संक्षिप्त में, हमने एक–दूसरे की संस्कृति के बारे में जाना। बातचीत के दौरान उस समुदाय में मौजूद विभिन्न विविधतायें भी सामने आई यथा–लोग कैसे एक दूसरे को संबोधित करते हैं, त्यौहारों को कैसे मनाने हैं, किस तरह के कार्यों में संलग्न है, ये कार्य कैसे किये जाते हैं, इनको करने हेतु क्या–क्या चाहिए, इत्यादि। प्रत्येक के बारे में बातचीत हुई और यह महसूस हुआ कि ये सभी महत्वपूर्ण हैं और एक अर्थपूर्ण तरीके से योगदान दे रहे हैं। हमने अलग–अलग भाषाओं के बारे में, भाषा व पहचान के बारे में, व्यक्ति के सम्मान के बारे में व संस्कृति और उसके भाषा के साथ सम्बन्ध के बारे में, भी बातचीत की।

इस बहुभाषी कक्षा को पढ़ाने के अनुभव ने मुझे भाषा व संप्रेषण से सम्बंधित बहुत से महत्वपूर्ण मुद्दों को समझने में मदद की। मैं यह समझ पाई कि एक भाषा की दीवार को तोड़ने के लिए क्या–क्या होना चाहिए। यद्यपि भाषा ही उसके लिए एकमात्र उपकरण नहीं है, पर यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि यह न केवल ऊपर वर्णित मूल्यों से सम्बंधित है वरन अर्थ निर्माण, सोचने, विचारों को कहने व एक–दूसरे से साझा करने से भी जुड़ी हुई है।

इस पूरे अनुभव ने मुझे यह समझने में भी मदद की कि मेरी शुरुआती कक्षाओं में क्या हो रहा था। क्या बच्चे काम में थोड़ा–सा भी मशगूल थे और क्या उन्हें कुछ समझ आया था? बच्चे अपनी भाषा का उपयोग करने में इतना क्यों हिचकिचा रहे थै? मुझे यह भी समझने में मदद मिली की मुझे अपनी कक्षा प्रक्रिया में क्या परिवर्तन करने की ज़रूरत है और यह कि मैं बच्चों से क्या सीख सकती हूँ? मैंने यह भी महसूस किया कि यदि बच्चों को अवसर दिया जाए तो वे हर संभव प्रयास करते हैं यह समझने का कि कक्षा में क्या हो रहा है और इसका भी कि वे शिक्षक द्वारा बताए गए सीखने के तरीकों का अनुसरण करें। मुख्यतया वे शिक्षक को यह समझने में मदद करते हैं कि वे क्या कहना चाहते हैं और इस तरह यह भी सुनिश्चित करते हैं कि कक्षा की प्रक्रियाएँ ज़्यादा अर्थपूर्ण बनें।

अंत में मुझे यह समझ आया कि किसी कार्य में मशगूल होने का क्या तात्पर्य है और कैसे एक अपरिचित भाषा कक्षा में बच्चे के योगदान को रोक सकती है। जबकि उनकी अपनी भाषा का प्रयोग उनकी भागीदारी बढ़ा सकता है। कक्षा के सभी बच्चों की भाषा को कक्षा में स्थान देना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है और यह शिक्षक की तरफ से बहुत से प्रयासों की माँग करता है। लेकिन इससे जो हासिल होगा वह की गई कोशिशों से कहीं ज़्यादा होगा।

– रजनी द्विवेदी

लेंग्वेज़ एंड लेंग्वेज टीचिंग (2013)

इकाई-5

अपरिचित भाषा सीखना

पाठ–13

प्रथम भाषा से द्वितीय भाषा सीखने में मदद

शुरूआती सालों में प्रथम भाषा को अच्छी तरह सीख लेने से द्वितीय भाषा को भी अच्छी तरह सीखने में बहुत मदद मिलती है।

1. **L1 के शिक्षण–अधिगम के लिए समय देने से L2 के विकास को नुकसान नहीं पहुँचता : यह मान्यता पूरी तरह गलत है कि L1 के लिए ज़्यादा मस्तिष्क में जगह और कक्षा में समय देने से L2 और L3 के लिए जगह (मस्तिष्क में) कम रह जाती है।**[2] बहुत सारे अनुसंधानों से यह साबित हो चुका है कि जो बच्चे पहले अपनी L1 में पढ़ना और लिखना सीखते हैं वे L2 और L3 में ज़्यादा तेज़ी से पढ़ना और लिखना सीख जाते हैं और ऐसे बच्चों के मुकाबले ज़्यादा बेहतर प्रदर्शन करते हैं जो पहले L2 में पढ़ना–लिखना सीखते हैं। इसकी वजह अगले बिन्दु में स्पष्ट की गई है।

2. **साक्षरता संबंधी ज्ञान व कौशल L1 से L2 और L3 में आसानी से स्थानांतरित हो जाता है** : जिम कमिन्स द्वारा दिया गया 'अंतरनिर्भरता सिद्धांत' (Interdependence Theory) बताता है कि एक भाषा को सीखने की प्रक्रिया में बच्चे भाषा अधिगम के बारे में ऐसे कौशल और पराभाषाई ज्ञान/जागरूकता (metalinguistic knowledge/awareness) भी हासिल करते जाते हैं जोकि बाद में दूसरी भाषा को सीखने या उस पर काम करने के लिए बहुत मददगार साबित होता है। कमिन्स ने इन

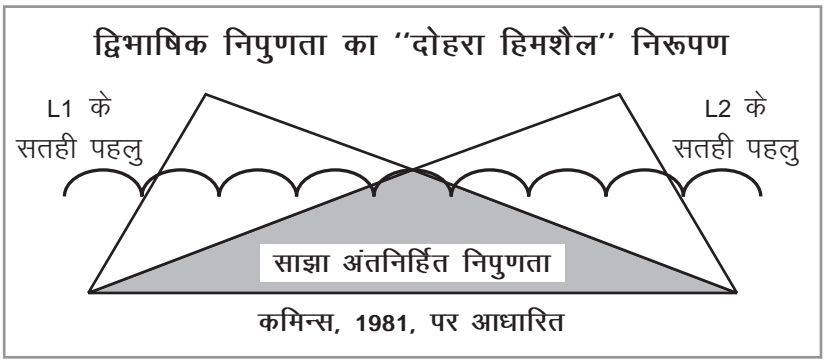

कौशलों और ज्ञान को विभिन्न भाषाओं के लिए साझा अंतर्निहित भाषा निपुणता (Common Underlying Language Proficiency-CULP) का नाम दिया है। साझा अंतर्निहित भाषा निपुणता प्रथम भाषा (L1) और द्वितीय भाषा (L2), दोनों के विकास के लिए एक आधार का काम करती है।

इसका मतलब यह है कि एक भाषा में CULP का जो भी विस्तार होता है उससे दूसरी भाषाओं के लिए भी लाभदायक प्रभाव पड़ते हैं। यह सिद्धांत इस बात को भी स्पष्ट करता है कि अतिरिक्त भाषाओं को सीखना लगातार आसान क्यों होता जाता है। यह सिद्धांत ऐसी दो या अधिक भाषाओं के लिए बिल्कुल सटीक मालूम पड़ता है जो एक–दूसरे से कुछ हद तक मिलती–जुलती होती हैं (यानी उनके उद्‌गम या संरचना में कुछ समानताएँ होती हैं)।

जैसा कि कमिन्स (2000) ने कहा है : ''एक भाषा में प्राप्त अवधारणात्मक ज्ञान से दूसरी भाषा को समझना आसान हो जाता है।'' उदाहरण के लिए, अगर कोई बच्चा अपनी भाषा में ''न्याय'' या ''ईमानदारी'' की अवधारणाओं को समझ चुका है तो नई भाषा में उसे इन अवधारणाओं के लिए सिर्फ सही शब्द (लेबल) जानने होते हैं। मगर, यदि उसे सही शब्द और अवधारणा, दोनों ही दूसरी भाषा में सीखने पड़ें तो उसका काम बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसीलिए L1 और L2 का अधिगम एक–दूसरे पर निर्भर होता है। यदि बच्चा L1 को अच्छी तरह सीख लेता है तो उसके लिए L2 को सीखना आसान हो जाएगा (यदि दोनों भाषाएँ कुद हद तक एक–दूसरे के समान हों)। यानी, ऐसा नहीं है कि नई भाषा सीखने के लिए बच्चे को शून्य से ही शुरू करना पड़ता हो।

एक भाषा से दूसरी भाषा में क्या स्थानांतरित होता है ?

– **अवधारणात्मक ज्ञान और उच्च स्तरी कौशल** (एक भाषा में सीख ली गई अवधारणाओं के लिए नई भाषा में केवल नए नामों या शब्दों की आवश्यकता होती है।)

– **ध्वनि जागरूकता** (शब्दों की विभिन्न ध्वनियाँ पहचानना)

– **विशिष्ट भाषाई तत्व** (प्रिंट की अवधारणा, अर्थ का अनुमान लगाने की क्षमता, अलग–अलग किस्म के पाठों की संरचना को समझना।)

– **पराभाषाई जागरूकता** (स्थिति के अनुसार भाषा के बारे में सोचने और उसका विभिन्न प्रकार से प्रयोग करने की क्षमता)

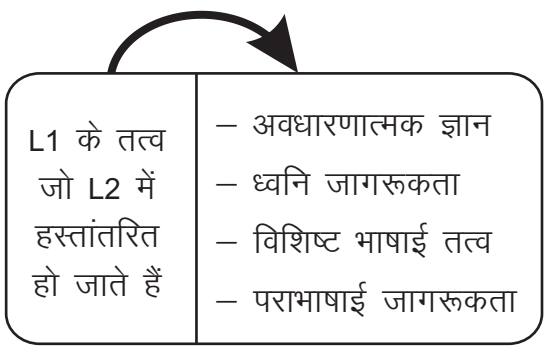

लिहाज़ा, पहली भाषा को अच्छी तरह सीखने से बच्चे को दूसरी भाषा में भी अच्छी तरह और जल्दी–जल्दी सीखने में मदद मिलती है क्योंकि भाषा के बहुत सारे अंतर्निहित कौशल उसे दूसरी या तीसरी बार सीखने नहीं पढ़ते। मगर, यह बात केवल ऐसे बच्चों के लिए ही प्रासंगिक है जो थोड़े बड़े हो चुके हैं (8–9 वर्ष से अधिक उम्र के) और सचेत रूप से अपनी प्रथम भाषा के ज्ञान को दूसरी भाषा सीखने में इस्तेमाल कर सकते हों।

हम जितनी भी भाषाएँ जानते और उपयोग करते हैं उसके बीच कौशलों व अवधारणाओं का यह स्थानांतरण चलता रहता है। लिहाजा, किसी भी एक भाषा के विकास के द्वारा हमारे व्यापक भाषाई एवं संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा मिल सकता है।

साक्षरता कौशलों का एक भाषा से दूसरी भाषा में स्थानांतरण तभी होता है जब एक भाषा में साक्षरता कौशल ठीक से विकसित हो चुके हों। उस स्तर पर बच्चों में पराभाषाई कौशल भी विकसित हो चुके होते हैं। जैसे– भाषा की संरचना और उपयोग के बारे में सोच पाने की क्षमता, जो बच्चों की मदद दो यो अधिक भाषाओं की संरचना में तुलना करने, विषमता, देखने ओर सम्बन्ध देखने में करती है। ये वो भाषाऐं होती है जिनको बच्चे एक साथ सीख रहे हो सकते हैं। इसीलिए, भाषाई स्थानांतरण केवल 7–9 वर्ष की उम्र में ही हो सकता है जब बच्चों में कम से कम एक भाषा के साक्षरता कौशलों का विकास हो चुका हो। कक्षा 1 में हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों भाषाओं में एक साथ पढ़ना–लिखना शुरू करने से किसी एक भाषा की साक्षरता की समझ को आधार के रूप में काम में लेते हुए दूसरी भाषा सीखने में कोई मदद नहीं मिलती।

3. स्कूल की अपरिचित भाषा (L2) में केवल बातचीत के द्वारा करने को कौशल अर्जित कर लेना ही काफ़ी नहीं होता। बोलचाल की भाषा (BICS) बच्चे आमतौर पर 2 साल में हासिल कर लेते हैं। बातचीत का यह कौशल अगली कक्षा में आने वाले जटिल और अमूर्त पाठों को पढ़ने और समझने के लिए काफी नहीं होता। इसके लिए अकादमित भाषा क्षमता (जिसे CALP कहा जाता है) की आवश्यकता होती है जिसे विकसित होने में 5–7 साल का समय लगता है। लिहाज़ा, हमारी शिक्षा व्यवस्था और अध्यापकों को समझना चाहिए कि **जो बच्चे स्कूल में दाखिले के समय स्कूल की भाषा से परिचित नहीं होते उन्हें प्राथमिक कक्षाओं में लगातार स्कूली भाषा सीखने और उसमें उच्चस्तरीय कौशल हासिल करने के लिए लम्बे समय तक मदद दी जानी चाहिए। केवल इतना ही काफ़ी नहीं होता कि ऐसे बच्चे हिंन्दी में सामान्य बातचीत करना सीख जाएँ।** स्कूली भाषा सीखने की समूची प्रक्रिया में बच्चों को अपनी प्रथम भाषा के माध्यम से महत्वपूर्ण सहायता की आवश्यकता होती है।

पाठ–14

अपरिचित भाषा सीखने के कुछ सिद्धांत

शिक्षण के माध्यम के तौर पर इस्तेमाल किये जाने से पहले एक अपरिचित भाषा को कई वर्षों तक एक विषय के तौर पर सिखाया जाना चाहिए। प्रारंभिक कक्षाओं में किसी अपरिचित या नयी भाषा सीखने–सिखाने हेतु कुछ सिद्धांत यहाँ रेखांकित किये गए हैं (क्रेशन,2009, और कमिन्स, 2009 से लिया हुआ) :

1. अपरिचित भाषा (L2) में 'समझने योग्य अनुभव' प्रचुर मात्रा में प्रदान करें

किसी भी अपरिचित भाषा को सीखने के लिए जरूरी है कि उस भाषा को सुनने के बहुत सारे अवसर प्राप्त हों (और पढने के भी), और वे अनुभव बच्चे के समझने के दायरे के भीतर हों! इसे 'समझने योग्य अनुभव' (Comprehensible Input) भी कहा जाता है। सरल भाषा में समझें तो इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षक द्वारा इस्तेमाल की जा रही L2 या नयी भाषा सरल हो, तथा हाव–भाव, चित्रों, गतिविधियों या बच्चों की घर की भाषा के शब्दों को मदद की तरह इस्तेमाल किया जाए। किसी भी प्रकार के परिचित संदर्भों का इस्तेमाल करना बच्चों की बेहतर समझ के लिए आवश्यक है।

2. अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण संदर्भ दें

कोई भी भाषा सबसे बेहतर तरीके से तब सीखी जा सकती है, जब उसे इस्तेमाल करने का कोई वास्तविक उद्देश्य हो। जब बच्चे किसी रोचक समूह कार्य में शामिल होते हैं या अपने पसंदीदा विषय पर चर्चा करते हैं तो ऐसे ही वातावरण का निर्माण होता है। जब किसी अपरिचित भाषा के इस्तेमाल का केंद्रीय उद्देश्य भाषा की शुद्धता न होकर संप्रेषण होता है, तो बच्चों के लिए उस भाषा को सीखना और उसका प्रयोग करना आसान होता है। जब बच्चे किसी अपरिचित भाषा को सीख रहे होते हैं तो वे स्वाभाविक तौर पर 'मिली–जुली या मिश्रित भाषा' का इस्तेमाल करते हैं और अपरिचित भाषा के

प्रयोग में कुछ गलतियाँ भी करते हैं। इसे हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि यह समझना चाहिए कि यह सीखने की प्रक्रिया का एक स्वाभाविक हिस्सा है।

3. पूर्व–ज्ञान को सक्रिय करें

L2 में कुछ भी नया शुरू करने से पहले बच्चों से L1 में चर्चा करें, विषय से संबंधित कहानियाँ सुनाएँ या L2 के कुछ प्रमुख शब्दों को सिखाएँ ताकि बच्चों के पूर्वज्ञान को निर्मित किया जा सके। बच्चों को अपनी घर की भाषा में खुलकर बात करने दें ताकि वे विषय के साथ सहज हो सकें। बच्चों से जुड़े सन्दर्भों, अनुभवों, परिचित किस्से–कहानियों और प्रचलित मुद्दों का इस्तेमाल करें ताकि वे खुशी–खुशी और सक्रिय तौर पर सीखने की प्रक्रिया में जुड़ सकें। बच्चों के परिचित संदर्भों का इस्तेमाल करना घर की भाषा व स्कूल की भाषा के बीच की खाई को पाटने में भी बहुत मददगार होता है।

4. अर्थ समझने में सहायता प्रदान करें

अपरिचित भाषा समझने में बच्चों की सहायता करने के लिए वास्तविक जीवन में काम में आने वाली चीजें, जैसे– चीजों के रैपर या फ्लैश कार्ड का इस्तेमाल किया जा सकता है। 'टोटल फिजिकल रेस्पोंस' (Asher, 1977) हेतु नाटक, एक्शन गीत एवं अन्य गतिविधियों का इस्तेमाल तथा नेचर वॉक के बाद चर्चा करना भी अर्थपूर्ण संदर्भ में भाषा सीखने के लिए काफी मददगार होते हैं। L2 सीखने के लिए L1 का प्रयोग अपने आप में एक मजबूत मदद या स्केफ्फोल्ड की तरह काम आता है।

5. बच्चों में आत्म–सम्मान का भाव भरें

बच्चों की भाषाओं, अनुभवों, विचारों और संस्कृति को कक्षा में भरपूर सम्मान मिलना चाहिए। एक सकारात्मक आत्म–छवि के अभाव में किसी भी तरह के सीखने–सिखाने के प्रयास विफल ही साबित होते हैं। अतः कक्षा में बच्चों की लोक–कथाओं, गीतों और व्यक्तिगत अनुभवों को प्रोत्साहित करें, जैसे– इन्हें चित्र व लेखन गतिविधियों का आधार बनाना, बच्चों के शब्दों को बोर्ड पर लिखना, उनसे कहानियाँ और कवितायें बनाना।

6. भाषा को विस्तार दें

कक्षा में खूब सारा मौखिक कार्य, जिसमें बच्चों के लिए आदर्श वाचन (read aloud) भी शामिल है, बच्चों में स्कूल की भाषा की समझ विकसित करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। शुरुआत में अधिकतम ध्यान मौखिक प्रवाह (oral fluency) विकसित करने पर दिया जाना चाहिए, न कि साक्षरता (literacy) पर। धीरे–धीरे बच्चों की भाषा को समृद्ध बनाने के लिए कुछ अन्य तरीके भी इस्तेमाल

किये जा सकते हैं, जैसे– L1 और L2 के शब्दों की तुलना करना या जिस भाषा में भी वे सहज हैं, उसमें अनुवाद करने और लिखने के लिए कहना। कक्षा में प्रिंट–समृद्ध वातावरण भी बच्चों की दृश्य–शब्दावली विकसित करने में खास तौर पर मदद करता है। शब्दों को दीवार पर चित्रों के साथ प्रदर्शित किया जा सकता है।

7. शब्द–भण्डार विकसित करने पर ध्यान दें

किसी अपरिचित भाषा को सीखने के लिए यह ज़रूरी है कि उस भाषा के सामान्य तौर पर प्रयोग होने वाले शब्दों का एक न्यूनतम शब्द–भण्डार शुरूआती दौर में ही विकसित कर लिया जाए। इससे मौखिक व लिखित रूप में उस भाषा को समझने में विशेष मदद मिलती है।

8. तनाव–मुक्त व सुरक्षित वातावरण प्रदान करें

बच्चों को किसी अपरिचित भाषा को सीखने के लिए एक तनाव–मुक्त और प्रेमपूर्ण वातावरण की ज़रूरत होती है, बिलकुल वैसे ही जैसे उन्होंने अपने घर पर अपनी पहली भाषा सीखी होती है! इसका अर्थ यह हुआ कि बच्चों पर जल्दी से नयी भाषा बोलना शुरू करने या L2 के औपचारिक आकलन का कोई दवाब नहीं होना चाहिए। एक ऐसा सकारात्मक वातावरण, जहाँ बच्चे चिंता से मुक्त हों तथा आत्मसम्मान और उत्साह से भरे हों, द्वितीय भाषा अर्जन में बहुत मदद करता है।

Source: *Adapted and translated from Jhingran, D., Early Literacy and Multilingual Education in South Asia, United Nations, Children's Fund Regional Office for South Asia, Kathmandu, 2019.*

पाठ–15

अपरिचित भाषा सिखाने की रणनीतियाँ

अपरिचित भाषा बोलने और सुनने के अधिक से अधिक मौके दिए जाएँ	अपरिचित भाषा का प्रयोग बच्चों के संदर्भ से जुड़ा हुआ और सार्थक हो	अपरिचित भाषा के प्रयोग के अवसर रुचिकर और मज़ेदार हों	कक्षा में चिंतामुक्त और खुशनुमा माहौल हो
अपरिचित भाषा सिखाने के लिए अनुकूल माहौल			
पढ़ने–लिखने और मौखिक गतिविधियों में सरल भाषा काम में लाई जाए जो आसानी से बच्चों को समझ में आ जाए	अपरिचित भाषा को चित्रों/भाव–भंगिमा/ स्पष्ट उच्चारण/ सरल वाक्य संरचना आदि तरीकों द्वारा बच्चों के समझने योग्य बनाया जाए	अपरिचित भाषा के प्रयोग का या परीक्षा का अनावश्यक दबाव न डाला जाए	आरंभ में नई भाषा बोलने में की गई गलतियों को सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा मानें और बहुत सुधार करने से बचें

NOTES

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

मातृभाषा के प्रयोग के बारे में क्या कहती है ?

- छोटे बच्चे अपनी मातृभाषा के माध्यम से सबसे बेहतर रूप से सीखते हैं।
- जहाँ तक संभव हो सके, कम से कम पाँचवीं कक्षा तक बच्चों की पढ़ाई उनकी भाषा में ही होनी चाहिए।
- जहाँ तक संभव हो सके, स्थानीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण सामग्री का निर्माण होना चाहिए।
- कक्षा में बहुभाषी शिक्षण का प्रयोग करते हुए बच्चों के घर की भाषा और स्कूल की भाषा का सोचा–समझा प्रयोग किया जाना चाहिए।
- भाषा सिखाने के लिए रोचक और बातचीत से भरे तरीकों का प्रयोग करना चाहिए।
- भाषा सिखाने की शुरुआत मौखिक स्तर पर ही करनी चाहिए और बाद में लिखने–पढ़ने पर जाना चाहिए।
- बच्चों के पढ़ने–लिखने की शुरुआत उनकी अपनी भाषा में ही होनी चाहिए।
- किसी नई या अपरिचित भाषा में पढ़ने–लिखने की शुरुआत कक्षा 3 से पहले नहीं करनी चाहिए, हालाँकि पहली कक्षा से ही इन नई या अपरिचित भाषाओं में बच्चों के स्तर के अनुसार रोचक और मौखिक काम शुरू किए जा सकते हैं।

MOTHER TONGUE-BASED MULTILINGUAL EDUCATION

7,097

linving languages in the world

50%

are in Asia-Pacific

Kyrgyzstan **5**

DPR Korea **1**

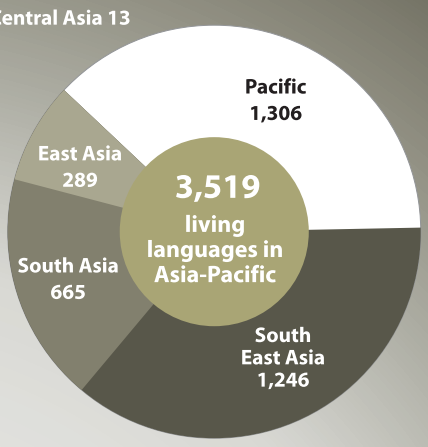

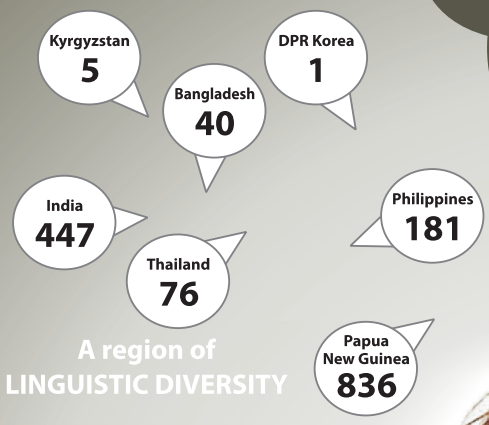

Bangladesh **40**

India **447**

Thailand **76**

Philippines **181**

Papua New Guinea **836**

A region of
LINGUISTIC DIVERSITY

40%

of the world's children don't have the chance to learn in their mother tongue

"IF YOU DON'T UNDERSTAND, HOW CAN YOU LEARN?
CHILDREN LEARN BETTER IN THEIR MOTHER TONGUE FIRST"

Mother tongue-based multilingual education is a realistic and cost-effective way to improve quality education for all and ensure respect for the diversity of communities.

Source : Adapted from UNESCO (Bangkok)